अंक : 14
मूल्य : ₹ 35

ISSN 2454-6879

देसहरियाणा

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

इस अंक में विशेष -

औरंगजेब और हिन्दू मंदिर, डेरे व मठाधीश : समानान्तर सत्ता के द्वीप, भक्ति और भक्ति आंदोलन, खास रचनाकार - तारा पांचाल, सात समंदर पार से - चिनुवा अचेबे, उज्जे की पाठशाला, कृषि संकट को समझने के लिए, थर्डजेंडर

कहानी • उपन्यास अंश • कविताएं • डायरी • हाशिया • रागनी • लोककथा

देसहरियाणा

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

अंक-14,
नवम्बर-दिसम्बर 2017

सम्पादक

सुभाष चंद्र

सम्पादन सहयोग

जयपाल, कृष्ण कुमार, अमन वाशिष्ठ, अरुण कैहरबा, अविनाश सैनी

सलाहकार

प्रो. टी. आर. कुंडू , परमानंद शास्त्री, सुरेन्द्रपाल सिंह, सत्यवीर नाहड़िया

प्रबंध एवं प्रसार

विपुला, सुनील, इकबाल, विकास साल्याण, ब्रजपाल, राजेश कुमार, किशु गुप्ता

कानूनी सलाहकार

राजविन्द्र चन्दी

सहयोग राशि

व्यक्तिगत: एक वर्ष 200 रुपए तीन वर्ष 500 रुपए
संस्था : एक वर्ष 400 रुपए, तीन वर्ष 1 हजार रुपए
आजीवन : पांच हजार रुपए संरक्षक : दस हजार रुपए

ऑनलाईन भुगतान के लिए

बैंक खाता : देस हरियाणा, इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र
खाता संख्या : 50297128780, IFS Code: ALLA0211940

ई-मेल : haryanades@gmail.com

ISSN 2454-6879

प्रकाशित रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
सम्पादक एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक। समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय होगा।

देस हरियाणा

912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118

संपर्क: **व्यवस्था - 99913-78352** **संपादकीय - 94164-82156**

स्वामी-प्रकाशक-सम्पादक-मुद्रक सुभाष चंद्र द्वारा 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा से प्रकाशित

इस बार

सम्पादकीय	सुभाष चंद्र	वैचारिक बहस को जन्म	3
कहानी	डा. नवरत्न पांडे	भैतर हजार की भोड़िया	5
	कमलेश भारतीय	तीन दृश्य : एक चेहरा	12
उपन्यास अंश	रत्नकुमार सांभरिया	सांप	8
	प्रदीप नील वशिष्ठ	जाट कहै सुण जाटणी	62
बीच बहस में	बूटा सिंह सिरसा	डेरों व मठाधीशों के प्रवचन-उपदेश	14
	मुकेश	समानान्तर सत्ता के द्वीप	16
	डा. सेवा सिंह	भक्ति और भक्ति आंदोलन	17
सात समंदर पार से	चिनवा अचेबे	अनु. राजेंद्र सिंह लेणै के देणे	58
ज़ज़्बे की पाठशाला	नरेश कुमार	ज़ज़्बे की पाठशाला	24
इतिहास के झरोखे से	बी.एन. पाण्डे	औरंगज़ेब और हिन्दू मंदिर	47
इन दिनों जो मैंने पढ़ा	प्रवीन कुमार	कृषि संकट को समझने के लिए	52
शख्सियत	स्वामी वाहिद काज़मी	हांसी से बही सूफी विचारधारा	19
	गुरबख्श सिंह मोंगा	इस्मत चुगताई: फुहशनिगार नहीं, हकीकतनिगार	42
युवा कलम	दिनेश हरमन	ग़ज़लें	21
कविताएं	ओम नागर- 11,	विनोद सिल्ला-23,	महेन्द्र सिंह-23
	राज कुमार जैन राजन -23		राजेश कुमार कश्यप- 41
खास रचनाकार	तारा पांचाल	मां की ना कहिए, न्या की कहिए	29
	डा. सुभाष चंद्र	कहानियों के बीच बोलता : तारा पांचाल	30
	राजवीर पराशर	जनतंत्र के कहानीकार : तारा पांचाल	35
	रविन्द्र गासो	चेतना का रचनाकार	37
डायरी	पृथ्वीसिंह गोरखपुरिया	मां	27
सिनेमा	किशु गुप्ता	सीक्रेट सुपरस्टार	57
निबंध	डा. कामिनी साहिर	प्रेम विवाह	56
हाशिया	सपना	थर्डजेंडर की स्थिति में बदलाव	43
लघु कथा	कृष्णचंद्र महादेविया-10	**गज़ल**	सत्यवीर नाहड़िया - 64
पुस्तक समीक्षा	नवरत्न पांडे	मुलाकात 'डरी हुई लड़की' से	39
	राजेंद्र गौतम	जाट कहवै, सुण जाटणी	61
बचपन	बालमुकुन्द गुप्त	गिलहरी का विवाह	45
रागनी	जय सिंह खनक-60,	रामेश्वर गुप्ता	60
लोककथा	डपोरशंख-44	बाम्हण अर बाणिया-64	

'देस हरियाणा' वैचारिक बहस को जन्म दे रही है

विकास होग्या बहुत खुसी, गामां की तस्वीर बदलगी
भाईचारा भी टूट्या सै, इब माणस की तासीर बदलगी
– रामेश्वर गुप्ता

पिछले दस–बारह सालों से 'हरियाणा नं. 1' की छवि गढने के लिए हजारों करोड़ रूपये खर्च करके काफी गर्दो–गुबार उड़ाई गई है। स्वर्ण जयंती के कार्यक्रमों की श्रृंखला को भी इस कड़ी में रखा जा सकता है। हजारों करोड़ के खर्च व इतनी ऊर्जा का हरियाणवी समाज को कोई वास्तविक लाभ भी हुआ है या ये 'कुरड़ी पे कारपेट' ही साबित हुआ है इसका अनुमान लगाना तो अपने आप में ही एक मेगा प्रोजेक्ट होगा।

संस्कृति जीवन मूल्यों का नाम है न कि स्टेज पर प्रस्तुत मनोरंजक आइटमों का। स्वर्ण जयंती आत्ममंथन का एक अवसर भी था, लेकिन प्रचार–युग में मंथन–विश्लेषण की फुरसत किसे है। विचार रेडीमेड हैं बस उनको लोगों के जहन में उतारने की तरकीबें ईजाद करना ही सृजनात्मक बुलंदी का शिखर है। प्रचार बाजार से आपको अपने अनुकूल ब्रांड–अंबेस्डर छांटना है।

पापुलर मीडिया ने भी पिछले समय में हरियाणा के समाज में रूचि ली है उसका सकारात्मक परिणाम ये रहा कि उसके द्वारा गढ़ा 'म्हारी छोरियां छोरां तै कम हैं के' मुहावरा आम जीवन का हिस्सा बन गया है। यह इस बात का संकेत है कि हरियाणा का समाज बदलाव के लिए कसमसा रहा है और अपनी ही गति से उसमें बदलाव आ रहे हैं। बदलाव की गति व दिशा का रुख मानवीयता की ओर मोड़ने वाली शक्ति की जरूरत सब महसूस कर रहे हैं ताकि अखबारों में खासी जगह घेर रही इज्जत के नाम पर हत्याओं, दलित–उत्पीड़न, घरेलू–हिंसा, यौन–उत्पीड़न, जातिगत विद्वेष की खबरें कुछ कम हों।

स्वर्ण जयंती वर्ष में डेरा सच्चा सौदा सिरसा प्रमुख के फैसले के बाद हुई आगजनी–हिंसा व जाट आरक्षण की उन्मादी भीड़ की हिंसा–आगजनी मात्र कानून–व्यवस्था का ही मसला नहीं है, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक संकट को दर्शाता है। हरियाणवी समाज के आंतरिक संकटों–अंतर्विरोधों को समझने की जरूरत है।

'देस हरियाणा' का 14वां अंक आपके हाथ में है। अभी पत्रिका के बारे में कुछ कहने के लिए बहुत ही कम समय है। लेकिन अभी तक के कार्य पर संतुष्ट होने के भी कई कारण हैं। पत्रिका का निरंतर समय पर निकलना अपने आप में एक संतोष प्रदान करता है। यद्यपि पत्र आदि लिखकर अपने विचारों से अवगत कराने का रिवाज काफी कम है, लेकिन फोन–फेसबुक आदि के माध्यम से सुधी पाठकों से पत्रिका की विषयवस्तु व सामग्री के संबंध में निरंतर जानकारी मिलती रहती है। इससे यह भी पता चलता है कि पत्रिका न केवल पढ़ी जा रही है, बल्कि एक वैचारिक बहस को भी जन्म दे रही है।

दो हजार की संख्या में पत्रिका छपती है और बहुत से स्कूल–कालेज के अध्यापक भी पाठकों में शामिल हैं जिस कारण कुछ सामग्री की कक्षाओं में सामूहिक पाठन की सूचनाएं भी मिलती हैं। यह भी सच है कि हरियाणा के परंपरागत पाठक वर्ग के बहुत बड़े हिस्से का पत्रिका से नाता नहीं बना है।

अभी तक पांच विशेषांक निकले हैं। प्रवेशांक भाषा विशेषांक था जिसमें जन भाषा व मातृभाषा के विविध पहलुओं को समेटती सामग्री थी। यह अंक काफी सराहा गया था। असल में इस अंक ने ही पत्रिका का स्तर व आगामी दिशा तय कर दी थी। चौथे अंक में आंबेडकर और भगतसिंह पर विशेष सामग्री प्रकाशित की थी इसमें इन महान क्रांतिकारियों के जीवन, कार्य व चिंतन संबंधी सामग्री के अलावा इनके स्वयं के विचार भी इसमें शामिल थे। इस अंक ने शोषण–मुक्त समाज की स्थापना करने वाले दो दार्शनिक–विचारकों के आदर्शों पर चलने वाले आंदोलनकर्ताओं के बीच साझा जमीन तैयार करने का काम किया। अंक 8–9 हरियाणा की स्वर्ण जयंती पर 'हरियाणा के पचास साल : क्या खोया क्या पाया' विशेषांक निकाला, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में हरियाणा के विकास की स्थिति, सीमाएं और संभावनाओं का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया गया। दसवां अंक हरियाणा के संदर्भ में भारत विभाजन पर केंद्रित था, इसमें साम्प्रदायिक उन्माद व हिंसा से उत्पन्न त्रासदी और भाईचारे की मिसाल कायम करते चरित्रों व घटनाओं पर मार्मिक रचनाएं थी। अंक–13 'कृषि संकट और बदल रहे किसान आंदोलन पर' वर्तमान कृषि संकट के विभिन्न पहलुओं को समेटे था, जिसकी सराहना सभी तरफ से हुई।

टीम देस हरियाणा ने पत्रिका प्रकाशन के अलावा बहुत महत्वपूर्ण साहित्यिक–सांस्कृतिक आयोजन किए हैं। 'हरियाणा की संस्कृति के पहचान बिंदू', 'हरियाणा के पचास साल: क्या खोया, क्या पाया', 'कबीर की विरासत', 'प्रेमचंद की प्रासंगिकता', शहीद भगतसिंह व उधमसिंह के जीवन व विचारधारा पर महत्वपूर्ण

व विचारोत्तेजक संगोष्ठियां आयोजित की हैं। लेखक से रू-ब-रू में अनुराधा बेनीवाल व सोना चौधरी, मुक्तिबोध स्मृति कविता गोष्ठी जैसे अनेक कार्यक्रमों के अलावा इस वर्ष 25 व 26 फरवरी को दो दिन का 'हरियाणा सृजन उत्सव' का आयोजन किया, जिसमें हरियाणा के साहित्य, सिनेमा, रंगमंच, कलाएं व हरियाणवी लेखन पर गंभीर मंथन हुआ।

देस हरियाणा की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि हरियाणा की 'इज्जत के नाम पर हत्या व कन्या भ्रूण हत्या' वाले राज्य की स्टीरियोटाइप छवि तोड़ रही है। इसी विश्वास के सहारे देस हरियाणा की टीम आगामी दस साल की योजना बना रही है। इसके लिए बौद्धिक-रचनात्मक-सृजनात्मक सहयोग के साथ आर्थिक सहयोग की भी आवश्यकता होगी। देस हरियाणा पत्रिका अपना स्वरूप ग्रहण करने की कसमसाहट में है। 'देस हरियाणा' के 14 अंकों के आधार पर पत्रिका के स्वरूप, सामग्री, दृष्टि की सीमाओं, उपलब्धियों व भविष्य की दिशा के संबंध में आपके सुझाव ही हमारी पूंजी है।

पत्रिका को निकालने के पीछे निश्चित तौर पर कोई दृष्टि तो जरूर होती है जो पत्रिका की सामग्री चयन से लेकर उसे आकार देने व पाठक वर्ग तक तय करती है। असल में यह दृष्टि ही इस समस्त उपक्रम को परस्पर एकमऐक करती है। 'देस हरियाणा' के पास भी एक जनपक्षीय दृष्टि तो है, लेकिन किसी किस्म की वैचारिक संकीर्णता व दुराग्रह नहीं है। हमारे लिए न तो कोई विषय अछूत है और न ही कोई विधा या लेखक।

टीम देस हरियाणा शुरु से ही अपने उद्देश्य में स्पष्ट है कि वह लेखकों के लिए पत्रिका का प्रकाशन नहीं कर रही कि कुछ रचनाकार एक दूसरे की रचनाएं पढ़कर एक दूसरे की पीठ थपथपाते रहें। देस हरियाणा के केंद्र में पाठक हैं, और पाठकों को अपने साहित्य व साहित्यकारों से परिचित कराना इसका मकसद है। इसलिए सामग्री चयन में पठनीयता व प्रासंगिकता को हमेशा ही ध्यान में रखा जाता है।

देखने में आया है कि साहित्यकार अपनी रचनाओं में जिस समाज का जीवन उकेरता है उससे जुड़ने या उसमें अपनी लेखकीय पहचान बनाने की बेचैनी नहीं हैं, बल्कि राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय होने की लालसा बढ़ती जा रही है। लेकिन यह भी सच है कि यदि किसी लेखक की अपने ही समाज में पहचान ना हो तो उसके द्वारा ख्याति बटोरने के समस्त उपक्रम एक न एक दिन राख में बदल जाते हैं। जिस समाज से रचनाओं के विषयवस्तु व पात्र हैं उस परिवेश में ही यदि रचना स्थापित न हो तो वह मध्यवर्गीय घरों की दीवार पर सजे प्लास्टिक के फूलों की तरह होगी जिसमें चमक तो होती है पर खुशबू नहीं।

लेकिन यह भी सच है कि हमारे रचनाकारों की जनता में कोई पहचान नहीं है और न ही इसके लिए उनमें कोई बेचैनी है। अधिकांश रचनाकार प्रकाशकों, अकादमियों तथा कुछ पुरस्कृत करने वाली संस्थाओं से ही रचनात्मकता के प्रमाण पत्र बटोरने की चिंता में है। पाठकों से जुड़ने की बजाए वे कथित आलोचकों की प्रशंसात्मक टिप्पणियों से खुश हैं। साहित्यकार स्वयं अपनी शक्ति को नहीं पहचानता और उसकी तरफ पीठ किए हुए है। साहित्यकारों को अपने रचना कर्म के आत्ममूल्यांकन की महती आवश्यकता है।

'देस हरियाणा' के सामने जो सबसे बड़ी समस्या है और कई बार निराश भी करती है वो है डाक-व्यवस्था की। पत्रिका डाक से भेजी जाती है तो यह जरूरी नहीं कि वह पाठक तक पहुंचेगी। न तो हम अपने बूते पर कोई वैकल्पिक व्यवस्था बना सकते हैं और न ही डाक व्यवस्था को सुधार सकते हैं। इस संबंध में लेखकों-पाठकों की ओर से भी कोई खास सहयोग नहीं मिल रहा। ऐसा देखने में आया है कि अपने पड़ौस में भी पहुंचाने में आलस महसूस होता है। ये कहना तो ज्यादती होगी कि प्रतिबद्धता की कमी है, लेकिन आदतों में ही यह शुमार हो गया है। खैर हम इतिहास की खास अवस्था में जी रहे हैं, जिसकी अपना ही स्वभाव व गति है। जनपक्षीय रचनाओं का 'देस हरियाणा' में हमेशा स्वागत है।

इस बार

हरियाणा के साहित्य में कथा साहित्य में इने-गिने महत्वपूर्ण साहित्यकार ही है। सुखद बात ये है कि पिछले दिनों हरियाणा से कुछ महत्वपूर्ण उपन्यास चर्चा में आए हैं और कुछ उपन्यास अभी लिखे जा रहे हैं। इस अंक में विशेषतौर पर प्रदीप नील रचित हरियाणवी उपन्यास 'जाट कहवै सुण जाटणी', ज्ञान प्रकाश विवेक रचित 'डरी हुई लड़की' तथा रत्नकुमार सांभरिया द्वारा लिखे जा रहे 'सांप' उपन्यास का परिचय दे रहे हैं।

साहित्य लिखा जाना ही काफी नहीं, बल्कि उसके उत्तरोतर विकास के लिए उस पर आलोचनात्मक विमर्श भी जरूरी है। इसके लिए 'खास रचनाकार' में इस बार तारा पांचाल पर विशेष सामग्री दे रहे हैं उम्मीद है कि इससे उनकी रचनाशीलता के सामर्थ्य को समझने में मदद मिलेगी।

हरियाणा के पाठकों को विश्व साहित्य से परिचित करवाने के लिए 'सात संमदर पार से' स्थायी स्तम्भ शुरु कर रहे हैं, जिसमें विश्व की एक श्रेष्ठ कृति का हरियाणवी में अनुवाद होगा। इस बार प्रसिद्ध कथाकार चिनुवा अचीबे की एक कहानी का हरियाणवी अनुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं।

समाज में ऐसे व्यक्तित्व हमेशा ही होते हैं जो अपने जज्बे की शक्ति से कुछ सकारात्मक प्रयास करने में सफल होते हैं और दूसरों के लिए भी प्रेरणा बनते हैं। यहां रोहतक में प्रवासी बच्चों के लिए नरेश द्वारा संचालित रात के स्कूल के अनुभव दे रहे हैं।

'बीच बहस में' समाज में अंधश्रद्धा व अंधविश्वास पर बूटा सिंह सिरसा और मुकेश के आलेख प्रस्तुत कर रहे हैं। 'इतिहास के झरोखे' से प्रसिद्ध इतिहासकार बी एन पांडे का 'हिंदू मंदिर और औरंगजेब' आलेख है जो विभ्रमों को दूर करता है।

नवरत्न पांडेय की कहानी भैतर हजार की भौड़िया, कमलेश भारतीय की कहानी, 'युवा कलम' में दिनेश हरमन की गजलें, विनोद सिल्ला की कविताएं, पृथ्वी सिंह गोरखपुरिया की 'डायरी' से मां के बारे में संस्मरण तथा लोकधारा में रामेश्वरदास गुप्ता व जयसिंह खानक की रागनियों के साथ 'डपोरशंख' व 'बाम्हण अर बाणिया' लोक कथाएं है।

आशा है कि ये अंक आपको पसंद आयेगा।

डा. सुभाष चंद्र

भैत्तर हजार की भोड़िया

□ डा. नवरत्न पांडे

भैत्तर हजार की भोड़िया के साथ गांव की साधारण भोड़िया की कहा सुनी हो गयी। बात कहासुनी से शुरू होकर पिलमा पछाड़ी तक पहुँच गयी। एक बुजुर्ग ने दोनों को अलग-अलग कर दिया। फिर दोनों लगी एक दूसरी को कोसने, गालियां देने .... लेकिन गालियां भैत्तर हजार की भोड़िया को भी आती हैं, वह बराबर गालियां दे रही थी। उसकी आवाज पैनी, तीर जैसी .... वह मोटी, कम बोलने वाली साधारण भोड़िया को दबा रही थी। अब साधारण भोड़िया अपना आपा खो रही थी। वह किसी ऐसी बात की तलाश में थी, जो उसकी यानि भैत्तर हजार की भोड़िया की बोलती बंद कर दे। साधारण भोड़िया ने अपनी वृद्धा सास की ओर देखा, जो उसे लड़ाई न करने, ऊंचा न बोलने की औपचारिक सीख दे रही थी। हालांकि, भीतर वे वह भी लड़ाई का मजा ले रही थी। फिर उसने हारती बहु की ओर देखा। वृद्धा के ओंठ बुदबुदाये ..... उस वाक्य में न जाने क्या था कि साधारण भोड़िया की आंखे चमक गई, उसने ढांठा खोल दिया तथा चरचराती, अग्नि शिखा सी भैत्तर हजार की भोड़िया की और हाथ का ठोस्सा दिखाते हुए कहा ''अ रांड तूं बी के बोल्लै, तेरे बाप नै तेरे भैत्तर हजार रपिये लिए थे। तेरे खसम तैं आज तक भी ना उतरे सैं।'' साधारण भोड़िया का यह ब्रह्मास्त्र साबित हुआ। अग्नि शिखा जैसे एकदम पानी के सम्पर्क में आ गई हो। उसका विश्वास जैसे डगमगा गया था। उसकी आवाज जैसे हलक में फंस गई थी, हालांकि उसने उसी चरचराटे के साथ बात का उत्तर देने की कोशिश की थी .... उसने कहा था ऐ ..... तेरी जैसी रंडी क्या जाने इन बातन को, मैं तेरी तरह ना हूं, जो मुफ्त में मिल जाऊं, माल के तो पैसे लागैं, हीरे की परख तो ...... तभी दर्शकों से कोई बोल पड़ी या पड़ा, ओए-होए ..... माल, सुनकर सैकड़ों आंखे मुस्कराई। भैत्तर हजार की भोड़िया की सास स्थिति की नाजुकी समझ गयी, वह दरवाजे से बाहर निकली, अपनी बहु का हाथ पकड़कर भीतर ले गयी। दर्शकों को बहुत बुरा लगा की ऐसा क्यों हुआ, उन्हें ब्रह्म सहोदर से क्यों वंचित किया गया। वे बतियाते, बतियाती, कुछ देर में अपने-अपने घरों को चले गये। साधारण भोड़िया ने विजयी आंखों से अपनी सास की ओर देखा, वह कृतज्ञ थी अपनी सास के तजुर्बे की, क्योंकि उसकी सास यदि तीर का सिरा उसे न पकड़ाती तो वह भैत्तर हजार की भोड़िया को कभी न हरा पाती।

बात कुछ भी न थी, मामूली कहासुनी, नाली के पानी को लेकर, कि साधारण भोड़िया ने आपत्ति की कि नाली में मछली के मीट के टुकड़े, छिली हुई मछली के पंख और धोयी गयी मछली का लाल पानी सब आकर गली में एक जगह एकत्रित हो गया है। इस मोहल्ले में ओर कोई घर मीट मछली को हाथ भी नहीं लगाता। पिछले साल बज्जे का छोहरा सत्तल बहतर हजार देकर दिशावर से लुगाई ले आया। कोई चार पांच महीने तो ठीक रहा लेकिन तीन चार महीने से यहां रोज मछली पकती हैं। जली हुई मछली की गंध पूरे मोहल्ले में फैल जाती है। साथ ही औरतें पंडित मातादीन को भी खूब कोसती है। क्योंकि इस बहतर हजार वाली शादी में वही बिचौलिया था। हालांकि मातादीन के भाव आजकल गांव में काफी उफान पर हैं। क्योंकि गांव के अनेक नौजवान पंडित जी से गुपचुप मिलते हैं। पंडित जी सबको एक ही बात कहते हैं, भइया रुपयों का बंदोबस्त हो जाए तो बात करना .... भोड़िया, पेड़ पर नहीं लगती कि तोड़ कर दे दूँ।'' और बकायदा कई लड़कों ने काम धंधा शुरू कर भी दिया कि साल दो साल में पैसे इकट्ठे हो गये तो शायद कहीं सूत बैठ जाए। वैसे बाज्जे को बहु कैसे मिली, उसे बिल्कुल नहीं पता। वह तो बेचारा भगत आदमी है। चौमासे में डांगर चरा लेता है, एकाध काटड़ी पालकर बेच देता है। वह तो क्या बेच देता है? यह सब उसकी पत्नी चंभोचाली़ करती है। चंभोचाली़, हां इसी नाम से उसकी ख्याति है। जब वह आई तो बाज्जे बक जवान था, खेत में पानी देता था, सर्दियों में गाजर, मूली बो लेता था, मां-बाप बिचारे के जीवित थे, काम ठीक था। चंभोचाळी को जैसे इसी बात की दिक्कत हुई कि सब खाते हैं बाज्जे अकेला खेत कमाता है। वह बाज्जे को लेकर अलग हो गयी। अब आधे किल्ले से भी कम जमीन बांटे आयी तो उसमें होणी जाणी तो कुछ थी नहीं, क्योंकि कुल जमीन के हिस्से बने ग्यारह, यानि पांच भाई बाज्जे समेत और चार बहन, एक मां, एक बाप ..... अब आधा एकड़ से भी कम जमीन में होणा क्या था सूत्थन? वैसे बाज्जे का ताऊ बाज्जे के बारे में सही कहता था .... बेटा, बाज्जे ब्याह मत करवाइए, नहीं तो तेरी घरआळी तेरा चतिया खींचैगी। तेरा अर मेरा तो मुँह ए कोनी ब्याह करवाण का।'' बूढ़ा शायद ठीक कहता था.....। बाज्जे ..... को सिर्फ खेत में काम करना आता था और कुछ भी नहीं आता था उसे। शायद यही कारण था कि चंभोचाली़ अलग होना चाहती थी। हालांकि बाज्जे को ताऊ ने आश्वासन दिया था कि कोई बात नहीं वह बाज्जे को अपनी आधी प्यलसण भी दे देगा। लेकिन ताऊ को चंभोचाळी का चाल चलन ठीक नहीं लगा। बाज्जे को यह बात तब पता चली जब वह सर्दियों की एक रात खेत से लौटा था। जब वह लालटेन के चांदणे से दरवाजा पार कर रहा था तो एक माणस की परछाई उसके पास से निकल गयी। उसे पहली बार ताऊ की बात याद आयी। उस दिन वह ताऊ की छतरी (समाधि) पर जाकर खूब रोया था। फिर बाज्जे कभी घर नहीं आया। गतवाड़ में उसकी चारपाई चली

गई, डांगर ढोर पालना, चराना और सर्दियों में वह चेजां देख लेता कोई। उसे दो सौ रुपये, बीड़ी का बंडल और दो चाय मिलती। चंभोचाऴी ने तीन लड़के जाम्मे ..... यह आज तक नहीं पता तीनों में से कौन किसका है ..... कोई कहता है एक माड़ू का है, दूसरा प्रताब का तीसरा सूधन का आदि – मतलब जब तक छोहरे स्याणे नहीं होये, उसने किसी को मना नहीं किया। बताने वाले तो यहां तक बताते हैं कि चंभोचाऴी को पता चल जाता है कि उसके पेट में लड़की है, तो फौरन दादी पतौरी गाजर का बीज लेकर हाजिर हो जाती है ..... और दो तीन दिन में संगवा देती है .... फिर चंभोचाळी ने दादा मातादीन को न जाने कैसे? पटा लिया ..... इस गांव में बहत्तर हजार रुपये तो बहोत लोगों के पास हैं मगर दादा मातादीन बिचौलिया न हो तो भोड़िया कहां से आए?

वैसे आज तक किसी को नहीं पता कि दादा मातादीन आखिर कहां सैटिंग करता है? भैत्तर हजार का हिसाब बकौल मातादीन, साठ हजार लड़की का बाप, इक्यावन सौ रुपये अगला बिचौलिया, इक्यावन सौ रुपये मातादीन के और अठारह सौ रुपये किराया भाड़ा कुल मिलाकर बहत्तर हजार ..... ये रेट इसी साल के हैं, हो सकता है अगले साल ..... सौ राजा की प्रजा!

भैत्तर हजार की भोड़िया के साथ जब देखो तब कोई न कोई पंगा हो ही जाता है। अभी उन बातों को तीन महीने भी नहीं हुए हैं जब उसने यह कह दिया था कि उसे रोटी, सब्जी, चूरमा, घी, दही, काचरी की चटणी बिल्कुल पसंद नहीं है खाने में। उनके घर में तो सूखी मछली का अचार और सेल्हा चावल चाव से खाया जाता है। तब सत्तल का भाई जस्सल गांव के जोहड़ से या नहर से या धानों के पानी में से एकाध बड़ी मछली लको (छिपा) लाता है। वह खुश हो जाती है। हफ्ते में दो बार भी मछली आ जाने से उसकी हूँस मिट जाती है। अभी पिछले महीने तिलकुटी का बरत था, तो औरतों ने नलके पर साफ कह दिया कि भैत्तर हजार की भोड़िया का बासण नहीं भरा जा सकता। क्योंकि वह तौरी खाती है और उसके कपड़ों में तौरी जैसी आती है। तो भैत्तर हजार की भोड़िया को बहुत बुरा लगा ..... वह गाल धूप्पड़ हुई लेकिन जस्सल ने उसी दिन एक काली पाईप नलके से लेकर घर तक दबा दी और मोटर भी लगा दी। अब भैत्तर हजार की भोड़िया को पानी लाने के लिए तथा बासण ठुआणे के लिए किसी के मुँह की तरफ नहीं देखना पड़ता।

लेकिन परसों एक और नयी कहाणी हो गयी। भैत्तर हजार की भोड़िया अन्दर कोठे में थी ..... और जस्सल अंदर कोठे में से निकल रहा था। तभी अचानक सत्तल और सबसे छोटा फत्तल आ गये। उस वक्त तो सत्तल कुछ नहीं बोला – लेकिन श्याम को सुत्तेगाम तीनों भाईयों में झगड़ा हुआ। तीनों ने दारु पी रखी थी।

सत्तल ने पहले तो भोड़िया की खाल तारी। फिर चला जस्सल की ओर .....। जस्सल भी जवान खून था, साफ-साफ कह दिया ..... सोचकर हाथ उठाना। और बहत्तर हजार तेरे अकेले के नहीं थे – तीनों ने मजदूरी करके जमा किये..... थे। सत्तल ने भी आवेश में कह दिया कि मजदूरी तो बाबू नै बी..... ? फिर वह चुप खींच गया। चंभोचाऴी अब बूढ़ी हो गयी है। उसकी कोई नहीं सुनता.....। असल में पंडित मातादीन ने जब आश्वासन दिया था तो तीनों भाई जमींदार का ट्रैक्टर भरने का काम करने लगे थे। वे सुबह जाते, सारा दिन माटी के साथ माटी होकर लगे रहते ..... शाम को हजार का एक नोट लेकर घर आते ...... लेकिन चंभोचाळी समझाती .... ''काम करना बुरी बात नहीं है ..... लेकिन खाने में कंजूसी करना शरीर के लिए ठीक नहीं। वह तीनों को तीन पाव पक्का घी खिला देती। तीनों सौ रहते। फिर भी पांच सौ बच जाते। दवाई, पानी, हारी, बिमारी के बाद, करीब छः महीने बाद एक दिन पंडित जी को बुलाया गया..... बातचीत के बाद पंडित जी बाहर आये तो आंखों में चमक थी। चंभोचाळी की आंखें, मातादीन की आंखे, सत्तल की आंखें, जस्सल की आंखे, फत्तल की आंखे ...... चंभोचाळी की आंखों में शायद सबसे ज्यादा चमक, क्योंकि उसके सगे जेठ यानी बाज्जे के बड़े भाई ने अपना अनपढ़ लड़का किसी तरह ब्याह लिया था और उन्हें यहां तक कि बाज्जे को भी याद नहीं किया था। और यही नहीं ठीक नौ महीने बाद जब सामने जेठ के घर थाली बजी तो चंभोचाळी की छाती पर सांप लौट गया। उसे दादी पतौरी की एक-एक बात याद आती जब वह गाजर के बीज का काढ़ा बना रही होती तो दादी कहती – ''एकाध छोहरी राख बी ले, देख छोहरी आंगण की शोभा हो सै। आर छोहरी कै बदले, कोए छोहरी दे बी देगा।'' लेकिन वह देखते देखते पूरा लौटा काढ़ा पी जाती और लेट जाती। यह सही है कि आज गांव में सगाई कोई मजाक नहीं है। पता नहीं सगाई आले कहां चले गये, कहां मर गयी, सारे देश की छोहरी, के राम लेग्या उन्नै। चंभोचाळी को भी इस बात का पता है कि उसके जेठ ने भी बदला किया है यानी जिसने जेठ के बेटे को बेटी दी है, उसी बेटी वाले की रिश्तेदारी में जेठ ने अपनी बेटी दी है। तभी तो उस रिश्तेदार ने अपनी बेटी उनको दी है, जिन्होंने अपनी बेटी जेठ के बेटे को दी है..... मतलब .....? मामला थोड़ा पेचीदा है.....। लेकिन 'वायस-वरसा' से शायद समझ में आ जाए। चंभोचाळी की जेठानी ने तो यहां तक कहा बताया कि ये भी कोई भोड़िया हुई .... ''ना खानपान मिलता, ना बोल्ली मिलती, ना पहरान मिलता, ना शक्ल सूरत ....., के सिर म्ह मारै इसी भोड़िया।'' उस दिन चंभोचाळी भीतर तक जैसे अंगार खा गयी थी।

सत्तल ने बहु पर हाथ उठाया तो वह दौड़कर भीतर गयी थी, उसे बहु के चलने, उठने बैठने से शायद कुछ अंदेशा हुआ था फिर उसका बहम हो सकता है।

भोड़िया की चाल देखकर उसने बाबा का रोट बोल दिया था। दोनों हाथ पच्छम दिशा की ओर उठाकर उसने कहा था 'हे बाबा! तू सुणता है सबकी, पोता का मुँह दिखादे ..... फिर उसने अपने ही कहे शब्द वापस ले लिए थे। उसने वाक्य में तरमीम कर दी थी। ... चहे बाबा पोती ए क्यूं ना हो, नामनां चाल ज्यागी।''

वैसे रोट उसने उस दिन भी बोल दिया था, जब पंडित मातादीन ने पैसे ले लिए थे और सत्तल को साथ लेकर उसने आश्वासन दिया था कि एक सप्ताह के भीतर-भीतर भोड़िया ल्या दयूंगा। उसका मन पकड़ा गया था उस दिन। उसने ऐतिहात के तौर पर प्रताब को भेजा था। क्योंकि बाज्जे भगत तो चंभोचाळी के लिए ना बराबर ही था। लेकिन आठ दिन बाद भी पं मातादीन, सत्तल व प्रताब का कोए बेरा बाड़ी नहीं आया था। वह परेशान हो गयी थी। आखिर ग्यारहवें दिन गली में 'झरण-झरण' हुई। लोग सुनकर अवाक रह गये थे। लुगाई-पताई बज्जे के घर की ओर दौड़ पड़ी थी .....। बोहड़िया देखने के लिए। पंडित मातादीन के चंभोचाळी ने पांव धोये। पंडित जी बड़े गर्व के साथ बता रहे थे कि लड़की के मामा ने बीच म्हैं पंगा डाल दिया था। कहै था कि छोहरा का काम धंधा देखूंगा। ज्यातैं तीन दिन लेट होग्या मामला। नहीं तो आठवें दिन आ लेते। ज्यब लोगों ने पूच्छया पंडित जी भोड़िया कित की (कहां की) सै, तो पंडित जी ने बात टाल दी थी। ठिकाणा की ए सै। न्यूं कहया करैं - गाय न्याणा की, अर बहु ठिकाणा की''। लेकिन चंभोचाळी को इससे क्या कि भोड़िया कहां की है? उसका तो घर खुल्ला रह ज्यागा। वह अब चैन से मर सकेगी।

बड़े बूढ़े ठीक कहते हैं - ''बिन घरणी घर भूत का डेरा'', चंभोचाळी बीमार, खटिया में पड़ी रहती तो घर-घर जैसा लगता नहीं था। टूटी खाट, पाटे गूदड़, गाभे, कोई चीज अपणी जगह पर नहीं .... न्यू समझो घर का टिब्बा उठर्या था। भैत्तर हजार की भोड़िया ने आते ही एक गाडी कूड़ा करकट निकाला। वह चौका बर्तन सफाई करती। अपनी सास को नहला देती। उसके ढेरे काढ़ती। बाज्जे की चांदी हो गयी थी। वह ज्यब प्यार से उसे बाबू जी कहती तो बाज्जे की आंख भर आती। वह आसमान की और मुंह उठाकर मन ही मन कहता ''तू सबकी सुणता है।'' बाज्जे को धुले हुए लत्ते मिलते, खाना समय पर मिलता। सत्तल, जस्सल और फत्तल में भी काफी बदलाव था। भोड़िया उन्हें दोनों समय नहाने के लिए कहती। वे टालते....., वह रसोई में खाना बंद कर कहती ''इसनान करो, नहीं तो खाना ना देऊं।'' और वे फटाफट नहा लेते। दारु भी वे अब खुलेआम नहीं पीते थे, एकाध दफा, वार-त्यौहार, लुक-छिपकर घूंट मार लेते। कहने का मतलब एक औरत ने घर की काया ही पलट दी थी। चंभोचाळी बीच में ठीक ठाक हो गयी थी। ऐबण औरत का शरीर बुढ़ापा म्है दुख पावै।'' फिर भी चंभोचाळी हांड फिर लेती थी। लेकिन दो दिन पहले उसे जब पता चला तो वह हार गयी। पहले से ज्यादा हार गयी। उसने दादी पतौरी को बुलाया था कि भोड़िया को देख, कोई आस.... दादी ने साफ कह दिया था - तौरी खा खा पाच्छा फूल रहा सै। इसकै कोए भूंड बी कर दे तो गाम छोड़ दयूंगी। चंभोचाळी को पूरा भरोसा था कि उसका भरोसा टूट गया। वह मरती पड़ती भोड़िया को शहर ले गयी, बड़ी डाक्टरणी के पास। डाक्टरणी ने कहा भोड़िया मां नहीं बण सकती। इसको तो पहले ही एक ऑप्रेशन में गड़बड़ हुई थी। वह गड़बड़ क्या थी वह आज तक किसी को पता नहीं चल सका। पता सिर्फ इतना तो चला है कि चंभोचाळी सुरग सिधारगी। बाज्जे भगत के दोनों छोटे लड़के जस्सल और फत्तल दिन रात ट्रैक्टर भरने का काम करते हैं। जस्सल काम पर से आता है, खाना खाकर दादा मातादीन को ढूंढ़ता है। वे आपस में क्या बात करते हैं, इसका पूरे गांव को पता है। •

सम्पर्क-9896224471

सच्चा हिन्दुस्तान देहातों में है

2 मार्च, 1888 में, पूना में, श्री हरि रावजी चिपलूणकर जी ने ड्यूक और डचेस ऑफ कॅनाट के सम्मान में बड़ा भोज दिया। श्री हरि रावजी के मित्र के नाते जोतिबा को भी समारोह में निमंत्रित किया गया। समाज के बड़े-बड़े धनवानों, अफसरों, व्यापारियों और राजा-महाराजा के साथ जोतिबा माथे पर पगड़ी, कांधे पर कम्बल, धोती, बाराबन्दी, डण्डा और फटी पुरानी चप्पल से लैस अपनी परम्परागत पोशाक में उपस्थित थे।

उन्हें जब बोलने को कहा गया तो बिना किसी रोक-टोक के सीधे ही ड्यूक को संबोधित कर उन्होंने कहना शुरु किया — यहां उपस्थित मेहमानों के बहुमूल्य कपड़ों और उन पर चमचमाते हीरों को देखकर यह मत समझना कि हिन्दुस्तान बड़ा सुखी और समृद्ध देश है। सच्चाई कुछ अलग है। ये सोने-चांदी के गहनों से लदे और सुगन्धित वस्त्र पहने हुए अमीर लोग इस देश की जनता के सच्चे प्रतीक नहीं हैं। यहां के अधिकांश किसानों के ये प्रतिनिधि नहीं हो सकते। सच्चा हिन्दुस्तान देहातों में है। वहां के लोग निर्धन, भूखे, नंगे, बेघर रहते हैं। नंगे पैर ही चलते हैं। ....

.. अगर राजकुमार सच्चा हिन्दुस्तान ही देखना चाहते हैं, तो वे पास-पड़ोस के देहातों में जाएं, वहां की अज्ञानी जनता की भीषण दरिद्रता को प्रत्यक्ष देखें। अछूतों की झुग्गी-झोंपडियों में भी आप जाएं और यह देखें कि कूड़े करकट से भी बदतर हालत में उनकी बस्तियां कैसे जी रही हैं...

... यह सब प्रत्यक्ष देखकर राजकुमार और उनकी पत्नी जाकर महारानी विक्टोरिया को यह कहें कि हिन्दुस्तान की गरीब जनता दरिद्रता की खाई में सड़ रही है। उसे अपने उद्धार के लिए शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

-पृ.-38, भारतीय समाज क्रांति के जनक महात्मा फुले, डा. मु.ब. शहा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 200

सांप

□ रत्नकुमार सांभरिया

*वरिष्ठ साहित्यकार रत्न कुमार सांभरिया कहानी के नामचीन हस्ताक्षर हैं। कहानी सृजन के क्षेत्र में उन्होंने राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाई है। उनकी कहानियों में ठेठ देसीपन व जमीनी गंध है। इन दिनों सांभरिया 'सांप' नामक उपन्यास का लेखन कर रहे हैं, जो घुमंतू जाति सपेरा-कालबेलिया के जीवन लोक, सामाजिक स्तर, शिक्षा, रीति-रिवाज और दुर्दशा पर आधारित है। रत्न कुमार सांभरिया ने उन दलित-वंचित-शोषित लोगों के कष्टमय जीवन को उकेरा है, जो आज भी धरती बिछाते हैं। आकाश ओढ़ते हैं, अपने पसीने से नहा लेते हैं और भूख खाकर सो जाते हैं। 'सांप' वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 से पूर्व प्रारंभ होता है। यहां पर प्रस्तुत है उपन्यास का एक अंश-**सम्पादक***

सांप पकड़वाने की धड़क, अवचेतन में गाड़ी चलाते लाये थे, सेठजी। गाड़ी ने प्लाट के सामने एक गड्ढे में धचका खाया। वे खुद में लौटे और सावचेत हो गये थे।

भाई सरूपानाथ की दर्दनाक मौत की व्यथा, गाड़ी में बैठे चले आये लखीनाथ को चेत हुआ। वह संभला। जांघ पर धरी टोकरी संभाली।

दोनों का मुकाम एक था और वे मुकाम पर पहुँच गये थे। दोनों की आंखें एक साथ उधर गईं। नींव के बिल में घुसे नाग को देखने वालों का बड़ा भीड़-भड़ाका था। नींव के गिर्द ठट्ठ जुड़ा था।

सेठजी गाड़ी से उतरे, आंखों पर चश्मा चढ़ाये, धोती के छोर अंगुलियों की चिकौटी से उठाये।

लखीनाथ गाड़ी से उतरा, अपनी टोकरी लिये, बांहें संगवाये।

चिहुंकें हुईं-''सपेरा आ गया। सपेरा आ गया। सांप पकड़ेगा। सांप पकड़ेगा। टोकरी साथ है, ले जाएगा बंद करके।''

चिहुंकें लखीनाथ सपेरा के कानों में पड़ीं। चिहुंकें सेठ मुकुंददास के कर्णपटों से टकराईं।

चिहुंकें फिर गूंजी-''सपेरा आ गया। सांप पकड़ेगा।''

''कैसे पकड़ेगा? गहरी खुदी है, नींव। नींव की बिल में है, सांप। पूंछड़ी कटी है, सांप की। फण काढ़े मधुमक्खी के छत्ते सा। छोह भरी दोहरी जीभ लपलपाती है, मौत सी। सांप डरावना है। खूंखार हुआ है। दिल दहलता है।'' आवाजें थीं।

फिक्रज़दा मिलनदेवी सांस भूली थी। उसने कपड़ा बंधी टोकरी बगल में दबाये आता सपेरा देखा। उसकी सांसें संबल पाने लगी थीं। रुमाल से आंसू पोंछ लिये थे, सुबकियां सहज होने लगीं थी,सुबकन पर प्रसन्नता उभर आई थी।

सेठजी और लखीनाथ तमाशबीनों को छितराते-बितराते नींव के निकट पहुंचे। सेठजी का तो देखा भाला था, सब। चिंता सबब थी बस।

ठेकेदार सरिया थामे खड़ा था। हलवाई के हाथों में झर था। सपेरे को देख, दोनों के फिक्र का ग्राफगिरा।

पंडितजी भी वहीं उपस्थित थे। उनके हाथ में नाग-नागिन का जोड़ा था। वह जोड़े को वैसे ही पकड़े थे, जैसे पहले पकड़े थे। उनके हाथों अब भी कंपकपाहट थी, जैसे पहले थी। उनके दिल में अब भी धड़क थी, जैसे पहले थी। विश्वास और अविश्वास की ऊहा के बीच कहीं थीं, उनकी सांसें।

लखीनाथ नींव के किनारे बैठ गया था। आंखें केन्द्र बिन्दु पर थीं, जहां सांप का फण था। उसकी निगाह छिटकी और सांप की कटी पूंछड़ी पर ठिठक गई थी। पूंछड़ी पर चींटी दल टूटा था घिरे घन सा।

वह कनपटी पर उंगली रखे उस जुगत को साधता रहा, सांप पकड़ आये। उस सकत (सूफ) को बूझता रहा, सांप काबू आये। कानिपानाथ को याद कर दोनों के कुण्डल छूकर झोपड़ी के बाहर चौतरी पर रूपे नाग देवताओं का स्मरण करता रहा, फूल, बताशे प्रसाद की मनौतियां मन-मन मानता रहा। सांप पकड़ा जाये।

'आज आया ऊंट पहाड़ के नीचे' वाली कहावत उसे रह-रह कर याद आई। उसने छान-छप्पर की आती-बाती, घरों के ओने-कोने, फैक्ट्रियों के पाइपों में भड़े (घुसे), बिल-बांबी में सुस्ताते सांप पकड़े थे। आज का खौफ़ उसे दिन में तारे दिखाई देने लगे थे। यहां वह चुनौती नहीं थी, जिसे वह खेल समझता आया था, अपितु जान पर खेलने जैसा शहीदाना कदम था। अभिनेता के द्वारा पर्दे पर रबड़ का सांप पकड़ कर विजयोल्लास की दर्शक-तृप्ति भी यहां नहीं थी, नींव में घुसे बैठे पूंछ कटे विकराल रूप नाग को पकड़ कर टोकरी में बंद करने जैसा साहसिक दमखम दिखाना है।

नींव के बाहर फैली मिट्टी पर चिंतातुर बैठा लखीनाथ हथेली पर चबुक टिकाये था।

पंडितजी ने सेठजी की ओर इस नज़र निहारा, सपेरा निरा है। बेजा लाये। खामखाह वक्त बीता। मुहूर्त टलवा दो, दस पांच दिन। कीड़ा-कांटा एक जगह नहीं टिकता, सांप सरक जायेगा कहीं।

पंडित जी की तंज करती आंखें देख कर उन्होंने लखीनाथ की ओर अनुरोध और आदेश मिश्रित निहा भरी।

लखीनाथ की सूझ, असूझ रही। कई दफा ऐसे अवसर सामने होते हैं, तब समझदार की समझ भी भोथा हो जाया करती है। मेधा पर ज़ोर दे कर हल खोजा जाता है।

उसकी आंखें उधर घूमीं और गर्दन ने झटका खाया। मानो करंट दौड़ा हो शरीर की शिराओं में। करंट! रोम-रोम चुनौती की स्वीकरोक्ति का संचार था।

वह सपेरा है। पटेबाज है। आसपास की सपेरा कालबेलिया, घुमक्कड़, खानाबदोश बस्तियों में उसका काम-धाम है। नाम है। अग्रज सरूपानाथ की तरह। सपेरा ने सांप से घबरा कर मुंह मोड़ लिया, वह सपेरा नहीं, कुजात हुआ। उसने सांस खींच कर सांस छोड़ी-''मां को दुनिया में सबसे असल माना गया है। मां सपेरन का

जाया-जना है, लखीनाथ।''

उसने हथेली पर हथेली थपकी। उठा। अंगड़ाई ली। लखी! करो या मरो।

टैण्ट वाले के पड़े पाइपों पर उसकी नज़र थी। आठ-आठ फीट लंबे लोहे के दो पाइपों को उसने उठा लिया था। पाइप, संबल-सहारा। नींव में उतर सांप को पकड़कर बाहर आने का एक सेतु। उसने दोनों पाइप नींव के साथ खड़े किये और नीचे उतर गया था।

लखीनाथ नींव में खड़ा था। नाग बिल में अड़ा था। दोनों के तोर-गौर एक हुए। सांप का सिमटा फण लहराया। उसके भीतर क्रोध और कराह जाग उठे थे। लखीनाथ ने आंखें गड़ायीं। सिफ्त सूझी।

सरिया हाथ में लिए खड़ा ठेकेदार पैनी निगाह उधर ही देखे जाता था। लखीनाथ ने उसकी ओर हाथ बढ़ाये-''सरिया दो।''

धर्म-दीन के धनी सेठजी ने उसे टोका-''नहीं, लखीनाथ नहीं,सांप मारना नहीं है। पकड़ना है, जिंदा। मेहनताना ड्योढ़ा लो, भले।''

लखीनाथ ने सहजता से कहा- ''सेठजी नाग म्हारो देवता होवै। इको दियो हम खावां। ना मैं मारूं। ना मैं छेड़ूं। माटी हटा-हटा, खुरच-खुरच जगहा बनाऊंगो। हाथ खोंस फण पकड़ सकूं।''

ठेकेदार से सरिया लेकर लखीनाथ ने कानों के कुण्डल छुए। आराध्य कानिपानाथ को सुमरा। उसने नाग के फण के थोड़ी दूर अंदर की ओर से मिट्टी झाड़नी ली, सरिया से।

स्पंदन हुआ। सांप में अदावत अरड़ाई। फण काढ़ा और दोहरी जीभ लपलपाई। वह बिल में फंसा था। खूब कसमसा कर भी असहाय था। अगर निकल पाता.....।

लखीनाथ बिल के साथ-साथ इस तरकीब मिट्टी झाड़ता खुरचता, छीलता गया, सांप स्वयं ना निकल पाये। वह सांप को फण से पकड़ कर पाइपों पर पैर रखता ऊपर जाये, सांप खिंचा आये। रति-मासा चूक हुई, भाई सरूपा की भांति काल के मुंह में जाएगा। रमती फिर रांड हो जाएगी। सपरानाथ सरीखे मंडराएंगे।

उसकी आंखों ने कूत की। ज़ेहन सधा। यक़ीन पगा। बिल के साथ-साथ सांप के पास-पास मिट्टी खुरच गई है और सांप का फंसापन कम हुआ है। उसकी देह हिले मिट्टी हिलती है। नेक (तनिक) बेर हुई, सांप बिल से बाहर हुआ।

लखीनाथ ने सरिया ऊपर फेंक दिया था, नाग के लहराते फण के निकट उसकी अनुभवी अंगुलियां मिट्टी में खुंसती गईं। उसने सांप के फण को तर्जनी तथा अंगूठे की दाब से दबाया अनामिका तथा कानी अंगुली से भींचते दबाव बनाया। मौत का टेंटुआ पकड़ा हो। उसने कितने ही सांप पकड़े थे। उन सांपों जैसा सहमापन, दुबक और कातर यहां नहीं थी। अकड़ थी,

प्रतिशोध भरी।

वह पाइपों पर पैर जमाता ऊपर आने लगा। सांप अटके रस्से की भांति खिंचता आया था, उसके हाथों। एकाएक एक पाइप डिगा और लखीनाथ का पैर फिसल गया। वह फिर नींव में था।

सांप का फण उसकी मुट्ठी में था। नाग और बाघ बड़े घाघ हुआ करते हैं। सहज काबू नहीं आते। छटपटाहट के साथ सांप ने बलें खाईं। क्रोध से उन्मत नाग लखीनाथ के बदन से लिपट गया था। इधर नाग लखीनाथ के तन को कसता जाता था, उधर लखीनाथ के पास प्राण-पण का एकमात्र उपाय सांप को जकड़े रखना था।

मौत और जिंदगी! सैनिक शत्रु को धराशायी कर स्वयं को सुरक्षित पाता है। कौन धराशायी होगा, कौन सुरक्षित रहेगा!

करतबबाज मौत के कुआं में आइटम दिखाया करता है। वह उसके दैनंदिन शो की पार्ट अदायगी होती है। सीना सवानी नींव में खड़ा सर्पलिपटा लखीनाथ, शिवजी की मूर्ति सा लखीनाथ कोई खेल-तमाशा या जादुई इल्म नहीं दिखा रहा था। अपनी जुबान और सपेरा कर्म के धर्म अपनी जान सांसत में डाले था।

वहां खड़े लोगों का ठट्ठ का ठट्ठ हक्का-बक्का था। किसी का मुंह खुला था। किसी के होंठों तले अंगुली दबी थी। कितने हाथ जुड़े थे। कितने ओष्ठ अपने इष्ट के मंत्र बुदबुदा रहे थे। कोई अपना जंतर (ताबीज) पकड़े था। सेठजी, पंडितजी, ठेकेदार सकते में थे। मुहूर्त टल जाता। सांप इधर-उधर हो जाता। सपेरा मरा। हम बंधे।

अपने पति सेठ मुकुंद दास की मना करती निगाह को नज़रअंदाज कर मिलन देवी नींव के किनारे आ खड़ी हुई थी। उसने नाग लिपटे महादेव के चित्र देखे थे। मूर्तियां देखी थीं। सपेरे के बदन पर एक ज़हरीले नाग को लिपटा देख वह सदमा गई थी। गुलाबी रंग की लिपस्टिक लगे उसके ललवई होंठ ना खुल पा रहे थे, ना बंद हो पा रहे थे। अर्द्ध खुले थे। आंखें फटीं-फटीं थीं, प्रतिमा हो। जंगल की झाड़ियों में फंसी वीरान हिरणी की भांति दुश्चिंताओं से घिरी, चौकड़ी भूली थी।

एकाएक लखीनाथ ने किसी कलाबाज की भांति दोनों पाइपों पर एक पैर जमाया और पछाड़ सी खाता बाहर आ गिरा था। उसने नाग को वैसे ही जकड़ा था, जैसे नाग ने उसका गात कसा था। ताकतें तुली थीं, दो थोक। वह उठ खड़ा हुआ था। संकट की घड़ी कमजोर टूट जाता है। कठोर मजबूती पाता है।

औसान भूले तमाशबीन दूर-दूर जा छिटके थे। भय देख भेड़ें भाग खड़ी होती हैं।

लखीनाथ ने सांप को अब दोनों हाथों से जकड़ लिया था। जितना जोर लखीनाथ में था, उसकी मुट्ठियों में समाया था। इतना दम तो कालिया नाग को काबू करते श्रीकृष्ण ने भी नहीं लगाया होगा। जितना जोर नाग में था, लखीनाथ को कसने में लगाया था। इतना दमखम तो कालिया नाग ने कृष्ण जी को भींचते नहीं लगाया होगा।

सपेरे लखीनाथ के सामने सांप उन्नीस निकला। हिम्मत जवाब दे गई थी, उसकी।

सपेरा के मतबूत हाथों भिंचता नाग कसाव छोड़ता निश्तेज हुआ, लटक गया था। सहेजने की सूखी फली लटकी हो, डाल से। कलांत।

आवाज़ें गूंजीं–''वाह! वाह! शाबाश! शाबाश! खूब। बहुत खूब।'' तालियां पिटीं। जयकारे उठे।

अंबर ने सराहा। अवनि ने पीठ थपथपाई। साहसिक करिश्मा। अतुल्य।

टोकरी रखी थी, कपड़ा बंधी। उसने सेठजी की ओर गर्दन मार कर इशारा किया–''सेठजी टोकरी धरी है, कपड़ा बंधी। जल्दी खोलो। ढक्कन हटाओ ऊंको। नाग बंद करूंगो।

सेठजी ने ठेकेदार की ओर हुक्मराना आंखों से देखा।

ठेकेदार ने उसी तोर उस मजदूर को तका, जिसे वह लंबू कहता है।

मजदूर ने तत्परता दिखाई। कपड़े की गांठ खोली। टोकरी अलग की। टोकरी का ढक्कन दूर रखा। पूंछड़ी कटे क्रोध भरे नहूष का गुस्सा ठण्डा हो गया था। विवश मन अपना फण समेटता, टोकरी के घेर कुण्डली मारता गया था। लखीनाथ ने टोकरी का ढक्कन बंद किया। उसे कपड़े पर रखा। लपेटा। ऊपर तले दो गांठें मार दी थीं, गोल।

पसीना–पसीना और रेतमरेत लखीनाथ ने अपने माथे का श्रम–स्वेद अंगुलियों से सूता और नीचे छींट दिया था।

उनका मन हुआ था इस अकल्पनीय साहस के लिये सपेरे की कमर थपक दूं। बड़ी जात हाथ छोटी जात कमर की ओर नहीं बढ़ पाये। सेठजी लखीनाथ को पचास रुपये में तय करके लाये थे। सौ रुपये का एक नोट उसकी ओर बढ़ाया–''लखीनाथ यह मेहनताना भी है और इनाम भी है, तुम्हारा।''

आकुल–व्याकुल हुई मिलन देवी तो मानो अपना संसार पा गई थी। सावन–भादों की झड़ी में खुशी के मारे जैसे मोर नाचता है, हर्षोल्लास की इस घड़ी उसका मन मयूर नाच उठा था। उसने अपने बटुए में खनखनाते चांदी के सिक्कों में से एक सिक्का खींच लिया था। वह सिक्का उसने लखीनाथ की ओर बढ़ाया और गद्‌गद् कंठ बोली–''सपेरा तेरा इनाम।''

अहमभरी की इस कठोरता में आत्मीयता मुलायम थी, बादाम में गिरी सी।

लखीनाथ ने मिलन देवी की ओर एक ज़र निहारा। ललाट पर लटकी स्वर्ण–बिंदिया से लेकर पैरों की अंगुलियों में पहने स्वर्ण बिछुए तक सोने से लकदक थी, वह। सोने की गोट–किनारी कढ़ी साड़ी से सजी–धजी थी। मानो किसी देवी की मूर्ति को प्राण–प्रतिष्ठा से पूर्व सजाया–धजाया हो। या हो सोने की खान, जहां से निकल कर आई हो, अभी।

ऐसी खूबसूरत स्त्री लखीनाथ अपनी चौबीस बरस की उम्र में पहली दफा देख रहा था। कुदरत के हाथों फुरसत में गढ़ी नपी–तुली–सुती काया। सारस सी गर्दन। गदराया जोबन। यह सब लखीनाथ के लिये दिवास्वप्न था। वह अपने बचपन में दादी–नानी–मां से परियों और रानियों की सुंदरता के बखान सुना करता था। यह महिला कहीं वही तो नहीं।

मिलन देवी से रू–ब–रू लखीनाथ की आंखों में उसकी छोटी जात का मान था। मिलन के नयनों में उसकी बड़ी जात का कायदा था।

मिलन देवी सिक्के को अंगुलियों की चिकौटी में पकड़े लखीनाथ की ओर हाथ बढ़ाये थी।

लखीनाथ ने गर्दन हिलाकर कहा–''नांह–नांह, सेठानी जी मेहनतानो पा लियो सेठजी से। बात कम की थी, खूब घणो दे दियो उनने। गरीब की तो मिनत बरकत करे।''

मिलन देवी ने अपनी सुरमई आंखें गोल कीं। एक आंख में अनुनय था, दूसरी में आग्रह। ऐसे द्विभाषी नेत्रों के सम्मुख भला कौन पुरुष नतमस्तक नहीं होता।

लखीनाथ ने मिलन देवी के सिक्के को कुरते की अपनी उस जेब में नहीं रखा, जिसमें सेठजी का नोट रखा था।

वह चांदी के पांच सिक्के लाई थी, पंडितजी के लिये। एक लखीनाथ सपेरे को दे दिया था। सबके सब अवाक देखते रहे थे। सेठजी ने एक बार मिलन देवी की ओर कड़ा देखा, लेकिन आंखें झुका ली थीं। नि:संतान पत्नी पर पति का ज्यादा वश नहीं रहता है।

लखीनाथ का गेरुआ रंग का कुरता रेत और सांप की लपेट से गंदा–संदा हो रहा था। सिर की लटें बिखरी थीं। मिलन देवी ने एक बारगी विचारा, यह सपेरा कोई

लघुकथा

मैं लड़की हूं न

□कृष्ण चन्द्र महादेविया

बस भरी तो थी किन्तु पाठशाला जाने वाले छोटे और बड़े बच्चे बस में चढ़ आते थे। कुछ अकेले तो कुछ को उनके अभिभावक बस की ऊंची पौड़ियों से उठाकर चढ़ने में सहायता करते थे। कर्ण और सुकन्या की दादी भी उन्हें पाठशाला छोड़ने और ले जाने आती थी।

बस में सातवीं सीट के पास खड़े पांच वर्ष के कर्ण ने अपने से एक वर्ष बड़ी चचेरी बहिन से पूछा–

''दीदी, बस के स्टैपस तो आप से भी चढ़े नहीं जाते, कितनी कठिनाई से चढ़ती हैं आप। दादी मां क्यों नहीं उठाकर बस में बिठाती? ..मुझे तो रोज झटपट स्टैपस से उठाकर बस में बठा देती हैं।''

''मैं लड़की हूं न भैया।''

छोनों बच्चों की बातें सुनती सवारियों और कण्डक्टर के हाथों के तोते उड़ गए थे। जब कि दादी मां बगलें झांकने लगी थी।●

सम्पर्क- 8679156455

भाण्ड–भगतिया नहीं, जोगी–जति है। अपनी साड़ी के पल्लू से इसका रेत झाड़ दूं। अंगुलियों की कंघी से इसकी बिखरी लटें संवार दूं। संकोच से उसकी आंखें नीची हो गई थीं। उसने अपनी पलकों से उसकी रेत छड़क दी थी। मन की अंगुलियों से लटें उसकी संवार दी थीं।वह चुपचाप पंडितजी के आसन के निकट आ बैठी थी, मुहूर्त होगा।

हलवाई भट्‌टी की ओर बढ़ गया था। पंडितजी अपने आसन आ विराजे थे। ठेकेदार नींव के पत्थर रखवाने को उद्यत था। तमाशबीनों की भीड़ छंट गई थी।

मुहूर्त घड़ी सवाये होती है। आधा घण्टा शेष रहा। लखीनाथ को उसकी झोपड़ी छोड़ना है, सेठजी अपनी गाड़ी के पास आ गये थे। लखीनाथ टोकरी संभाले उनके साथ था। उसने गाड़ी का गेट खोला और आगे की सीट पर बैठ गया था, जैसे बैठा आया था।

वह मजदूर अभी गाड़ी में ही बैठा हुआ था, डरा। सुध–बुध खोया। सेठजी ने

उससे कहा–''अरे जिस सांप से तू डरा हुआ है ना और मरा जाता है, बिल्कुल, उसे लखीनाथ ने पकड़ कर अपनी टोकरी में बंद कर लिया है। टोकरी उसकी जांघों पर रखी है। वह गाड़ी में बैठा है, सांप को दूर कहीं जंगल में छोड़ेंगे। अब निश्िंचत हो कर काम कर जा।''

मजदूर गाड़ी से नीचे उतर गया था। उसने लखीनाथ को देखा। उसकी जांघों पर रखी टोकरी देखी। ठण्डी आह ली और उधर मुड़ गया था, जहां ठेकेदार खड़ा था।

लखीनाथ को अपनी पास वाली सीट पर सांप की टोकरी जांघों पर रखे बैठा देख, सेठजी के अंतस में हठात धक हुई। यह धक वह नहीं थी, जो नींव की बिल में घुसे नाग को लेकर थी। यह धक सांप के भय की धक भी नहीं थी। सांप टोकरी में बन्द था। टोकरी कपड़े बंधी थी। लखीनाथ अपनी दोनों कुहनियां टोकरी पर रखे बैठा था। यहां हिकारत थी और बड़ी जात का हिंस्र अहम पगुराया था।

गाड़ी की डिक्की खोलते हुए उन्होंने लखीनाथ से कहा–''सपेरा डिक्की खोल दी है, मैंने। टोकरी रख दे उसमें। और पीछे की सीट पर बैठ जा, जहां मजदूर बैठा था।''

लखीनाथ को सेठजी का व्यवहार खुदगर्ज लगा। सूल सी चुभी।

उसकी मुटि्ठ्यां कस गई थीं, जैसे सांप का फण पकड़े कसी थीं। उसकी आंखें लाल हो गई थीं, जैसे सांप को पकड़ते हुई थीं। उसने आक्रोश भरे कंठ कहा–''सेठजी आप गाड़ी-वाड़ी रहने दो अपनी। मैं खुद चलो जाऊंगो, अपने पैरों। कोहनी मारे गुड़ ना फूटे।''

वह गाड़ी से नीचे उतरा। टोकरी बगल में दबा ली और मुट्ठी भींचे बढ़ गया था, जंगल की राह।

वह आंकी-बांकी पगडंडियों से होता हुआ खेतों की ओर आ गया था। कंटीली झाड़ियों के पास बाम्बी सी दिखने वाली एक जगह,जिसके इर्द-गिर्द बिलें थीं, उसने टोकरी रख दी थी।

लखीनाथ सपेरा की भिंची मुट्ठियां तब खुलीं, जब वह भुजंग को छोड़ने के लिए टोकरी बंधे कपड़े की गांठ खोलने लगा। •

सम्पर्क-भाड़ावास हाउस, सी 137, महेश नगर, जयपुर-302015, मो.: 94604-74465

ओम नागर की तीन कविताएं

कथीर के सपने

तुमने कहा
हरित क्रांति ला रहें है हम
हमने घड़े में बीज अवेरना छोड़ दिया
तुमने कहा
अब क्रान्ति सफ़ेद रँग में जायेगी द्वारे-द्वारे
हमने देशी गायों के झुण्ड ताड़ दिए
सदा के लिए सूने
तुमने कहा
बदरंग और बदबूदार न होगा खाद का रँग
हमने सफ़ेद ज़हर से भर दिए खेतों के कंठ
तुमने कहा
खड़ी फसल में लगे रोग की होगी जाँच
हमने मुट्ठियों-मिट्टी रख दी
ग्राम सेवक की हथेली पर
तुमने कहा
गेंहूँ घर में पेट जितने ही बोओं
एक पानी की सरसों बोओं
दो पानी का धनिया
हमने बिना पानी की फसलों से मोड़ लिया मुँह
तुमने कहा
लहसुन से बदल जाएँगी हमारी क़िस्मत
हमने बिन बिचारे लगा दी सफ़ेद कुएँ में छलाँग
तुम अब कह रहें हो
किस ने कहा था रखों सफ़ेद सोने से ऐसी दीवानगी
हमारे सारे सपने कथीर हो गए
यूँ न जाने कितने वज़ीर पर वज़ीर हो गए
हम तो दिन ब दिन किसानी फ़कीर हो गए।

मिट्टी में मिट्टी होने के सिवाय

1

कौन हो तुम ?
किसान हूँ साहेब
क्या चाहिए
कुछ नही थोड़ा...
थोड़ा क्या
पूरा बोलों
यही
कि थोड़ी कर्ज़ माफ़ी
और थोड़ा दाम बढ़ जाएँ
हमारे भी बच्चे हैं साहेब
क्या खिलाएँगे
क्यूँ बच्चे मुझसे पूछकर
पैदा किए थे
किसने कहा था तुमसे
कि खेती करो
किसान-'कौन कहेगा साहेब
पीढ़ियाँ हो गई
यही सब करते
और कर भी क्या सकता हूँ
मिट्टी में मिट्टी
होने के सिवाय।'

2

अरे तुम फिर आ गएँ !
और यह कमीज़ पर ख़ून कैसा
कुछ नहीं साहेब
आपके सिपाहियों ने बंदूक चला दी
बहोत ख़ून ख़राबा हो गया उधर
हम भी क्या करें साहेब
मरता मरे भी
और मरने से पहले लड़े भी नहीं
अब हमसे न होगा
हमारा छोटा-सा निवेदन
तुम्हारे मोटे दीमाग में अच्छे-से
बिठा लीजिए साहेब
तुम साहेब !
काहे हमारी आत्मा दुखाते हो बिना बात
आप भी कुछ कहो न मेम साहब
सुनो! साहेब
फ़सल का दाम बढ़ा दीजिए
या फ़िर हमे राज का
आख़िरी फ़ैसला बता दीजिए
मरता क्या न करता मेम साहब
होना भी क्या हैं-
'मिट्टी में मिट्टी होने के सिवाय।'

सम्पर्क-9460677638,8003945548

•

तीन दृश्य : एक चेहरा

□कमलेश भारतीय

तीन दृश्य मेरी आंखों में ठहरे हुए हैं और इन दृश्यों में एक ही चेहरा सामने आता है। सोते-जागते मैं इन्हें देखता रहता हूँ।

उस दिन मेरी ड्यूटी नाइट-शिफ्ट में थी। अखबार के दफ्तर में क्या दिन तो क्या रात। लोगों का आना-जाना लगा ही रहता है और देर रात वह आया था। रिसेप्शन से फोन आया था कि कोई व्यक्ति किसी कांड के बारे में कुछ सनसनीखेज जानकारी देना चाहता है। क्या उसे न्यूज-रूम में भेज दें?

अब अखबार और सनसनी तो जैसे एक-दूसरे के लिए बांहें फैलाए स्वागत के लिए तैयार ही रहते हैं। उसे वरिष्ठ साथी ने फौरन अंदर बुला लिया।

बिल्कुल यहीं से मेरा पहला दृश्य शुरू होता है। पाठक कृपया ध्यान दें। वह अकेला ही आया था और एकदम बौखलाया हुआ था। वह जान नहीं पा रहा था कि बात को कहां से शुरू करे।

वह सनसनीखेज रहस्योद्घाटन करने से पहले अपनी जानकारी देते हुए अपने बचपन की गाथा सुनाने लग गया था। उखड़ी-उखड़ी सांसों में वह अंग्रेजी में बता रहा था कि उसका जन्म पालन-पोषण पहाड़ के किसी गांव में हुआ था। उसने अपने गांव का कोई भला-सा नाम भी बताया था, जो मुझे याद नहीं रहा। इस मामूली भूल के लिए पाठक मुझे क्षमा कर देंगे।

अब अपने आपको नालायक कौन कहता है। उसने भी बताया कि वह पढने् में होशियार था और अंग्रेजी तो खूब पटर-पटर बोलता था। हर क्लास में फर्स्ट डिवीजन और अध्यापकों की शाबाशी। मां ने मुश्किल से पढ़ाया। बी.ए. से आगे मां की हिम्मत जवाब दे गई थी। नौकरी की तलाश करते-करते वह इस शहर में एक क्लर्क बन कर आ गया था। इस तरह बचपन से जवानी तक की गाथा सुनाते हुए वह मां को याद करके रोया भी और अपनी कमीज के कफों से आंखें भी पौंछी। दृश्य काफी भावुक सा हो गया-जैसे निर्देशक के सुझाए गए अभिनय से पात्र आगे बढ़ जाते हैं, कुछ इसी तरह वह भावावेश में बहने लगा था।

अब आप देखिए कि अखबार के दफ्तर में इस तरह लंबी जीवन गाथा सुनने का न कोई समय है, न अवसर। हम किसी तरह धैर्यपूर्वक उसकी बात सुन रहे थे। सुविधा होती तो पीछा छुड़ा कर भाग निकलते। पर हम भाग नहीं सकते थे। हमें तो देर रात तक ड्यूटी देनी थी और एक संस्करण निकालने की जिम्मेदारी सिर पर थी।

उसकी जीवन-गाथा की पुस्तक बंद करने के उद्देश्य से वरिष्ठ साथी ने उसे कहा कि इतना समय हमारे पास नहीं है। पैड उठाओ और अपनी स्टेटमेंट लिखकर चलते बनो। छपने लायक कुछ होगा तो सुबह छप जाएगा, नहीं तो हमारे पास रद्दी की टोकरी रहती है जो हर समय मुंह खोले रहती है कि मुझे कुछ खाने के लिए दो। इस तरह अखबार का नहीं, रद्दी की टोकरी का पेट भर जाएगा।

कुछ देर तक वह पैड और पैन लेकर कुछ लिखने की कोशिश करता रहा परंतु वह तो आत्मकथा सुनाने आया था, लिखने नहीं, वह फिर पैड को एक तरफ धकेल कर शुरू हो गया-आप मेरी बात क्यों नहीं सुनते? मैं आपको एक स्कैंडल की जानकारी देना चाहता हूं और आप हैं कि...

-पर आप स्कैंडल की बजाय अपनी रामकहानी सुना रहे हैं।

-यह रामकहानी उसी से जुड़ी हुई है।

-बेशक जुड़ी होगी पर हमें अतीत के हिस्से से कोई मतलब नहीं। हमें तो स्कैंडल की बात बताइए और काम करने दीजिए।

-पर आप यह क्यों नहीं सोचते कि एक गरीब विधवा मां के पास पैसे होते तो पहाड़ के एक छोटे से गांव का एक होशियार युवक बी.ए. करके इंजीनियर, डॉक्टर या वकील बनता और गांव का नाम रोशन करता। खेद की बात है कि आज वह युवक क्लर्क है और करप्शन के एक स्कैंडल में फंसा होने के कारण किसी भी दिन नौकरी से निकाला जा सकता है। उफ! मेरी मां मुझे क्या बनाना चाहती थी और मैं क्या बन गया।

इस तरह वह फफक-फफक कर रोने लगा। न्यूज रूम संवेदनहीन होता है। वहां आंसुओं का कोई महत्व नहीं। न्यूज रूम सिर्फ काम की बात सुनता है, बेकार की बातों पर किसी बहरे की तरह सिर्फ आंखें झपकाता रहता है।

इस तरह वह रोने के बाद खुद ही चुप हो गया। सुबकते हुए बताने लगा कि शहर में बड़ा लाइसेंस बनाने का कांड हुआ है, उसी में वह भी शामिल है और चार्जशीट किया जा चुका है। एक गिरोह वाहनों के लाइसेंस बनवाने के आरोप में काबू किया गया था। ऐसा समाचार आया भी था पर उससे जुड़े किसी बौखलाए हुए चेहरे का सामना इस तरह आधी रात को करना पड़ेगा, वह नहीं जानता था।

अब चोर कब कहता है कि चोरी उसने की है और वह भी अपनी सफाई पेश किए जा रहा था। वह अपने ऊपर लगाए आरोपों का खंडन करते कहे जा रहा था कि लाखों रुपये के स्कैंडल में क्या उस जैसा एक क्लर्क कोई भूमिका निभा सकता है। इसमें मामूली क्लर्क का क्या योगदान हो सकता है। बड़े-बड़े मगरमच्छों को कोई कुछ नहीं कहता, उस जैसी छोटी-छोटी मछलियों को काबू करके भ्रष्टाचार हटाने का अभियान चलाया जा रहा है। उसकी छोटी सी गृहस्थी, छोटा-सा स्वर्ग घर नरक में बदल गया है। वह घर न जाकर अखबरों के दफ्तर में घूम रहा है क्योंकि पुलिस उसके पीछे पड़ी है। उस जैसे क्लर्कों का जीवन बर्बाद हो रहा है।

वरिष्ठ साथी ने व्यंग्य किया-माना आप छोटी मछली ही हैं, पर जब तक आप कांटे से लगा चारा नहीं खाते, तब तक नहीं फंसते।

वह मायूस होकर बोला-काजल की

कोठरी में कब तक कोई दाग से बच सकता है।

–फिर आपको मगरमच्छों के खिलाफ शिकायत क्यों? उनकी पाचन शक्ति से कौन वाकिफ नहीं। उसे पानी से निकालो, वह रेत पर मस्त लोटने लगता है जबकि पानी के बिना छोटी मछली का गुजारा नहीं, फिर उसी पानी को गंदला क्यों करते हैं? मगरमच्छ के खिलाफ लड़ाई क्यों नहीं छेड़ते?

– पर आप उनके स्कैंडल में शामिल होने की बात क्यों नहीं लिखते?

–देखिए, मिस्टर ए.बी.सी.। अखबार भाषणबाजी को कोई मान्यता नहीं देता है। आपके पास क्या प्रमाण है कि वे लोग स्कैंडल में शामिल थे?

उसके पास अपनी बात के प्रमाण में कुछ भी नहीं था–सिवाय गुस्से के, बौखलाहट, नौकरी छूट जाने के डर और समाज में बदनाम होने के डर के।

पता नहीं कब उसे नौकरी से अलग कर दिया जाएगा... पता नहीं कब पुलिस उसे गिरफ्तार कर लेगी। खैर। जैसे-तैसे उसे चाय की प्याली पिलाकर विदा किया।

पर पाठकगण। यह दृश्य आधा ही था। आधा दृश्य इससे भी भयानक था।

कुछ समय बाद रिसेप्शन से फोन आया कि वह युवक रिसेप्शन पर ही डेरा डाले बैठा है और कि अपने घर नहीं जा रहा। यदि आपने उसे यहां से हटने के लिए नहीं कहा तो हम उसे पुलिस के हवाले कर देंगे। वरिष्ठ साथी हंसे–अरे भाई लोगो। पुलिस से बचने के लिए तो वह वहां बैठा है और आप लोग... खैर। उसे समझाते हैं।

वह हमारा कोई नहीं लगता था पर घर जाने या कहीं और बैठने को कह देने में कोई हर्ज नहीं था।

गेट पर जाकर देखा कि उसके पास एक थैला है जिसमें वह क्या-क्या भरे हुए है, कोई नहीं जानता। जैसे वह इस समाज से भाग निकलने की तैयारी किए हुए था। सुबकते हुए वह कहने लगा–मैं कहता न था कि मैं कुछ और बनता पर मैं एक कठपुतली बनकर रह गया और अब कठपुतली की जान सांसत में है।

इसी बीच पुलिस की जिप्सी गेट पर आकर रुकी। पुलिस के जवान उतरे और उसे पहचान कर जिप्सी में खींच लिया। गेंद की तरह उछल कर वह जिप्सी में जा गिरा। उसके थैले का सामान फर्श पर उलट दिया गया।

वह जोर-जोर से रोने लगा–मेरी कोई नहीं सुनता। कौन कितना कमीशन लेता था, कोई नहीं मानता। अफसर घरों में सोए हैं लंबी तान के और पुलिस मेरे पीछे पड़ी है। लीजिए तलाशी।

थैले के कपड़ों में उसने भाग कर एक कपड़ा उठाकर सीने से लगा लिया। यह सूट मैं मां के लिए लाया था पर वह मेरा इंतजार न कर सकी। मेरी नौकरी पर

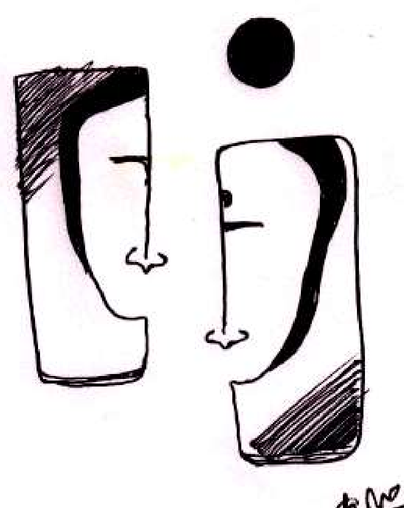

आंच देखकर दम तोड़ गई। पुलिस कहां सुनती है ऐसे किस्से। जिप्सी स्टार्ट हुई और उसे लेकर अंधेरे में खो गई। जाहिर है वह रात उसकी पुलिस स्टेशन में कटी होगी।

पाठकगण। इसके बाद के दो दृश्य बहुत छोटे हैं, मानो उस दृश्य के पूरक हों।

मैं उस आदमी, उस रात और उस बात को एकदम भूल गया था–बिल्कुल रात गई, बात गई की कहावत की तरह। इस बीच एक दिन एस्टेट ऑफिस किसी कवरेज के सिलसिले में गया तो देखता क्या हूं कि चार पुलिस जवानों से घिरा, हथकड़ियों में बंधा एक युवक कचहरी की ओर ले जाया जा रहा है। कुछ जाना-पहचाना चेहरा लगा और इस दृश्य के साथ अखबार के दफ्तर में आधी रात को देखा हुआ चेहरा जुड़ गया।

न वह युवक मुझसे आंखें मिला पाया, न मैं। दोनों ने एक-दूसरे को देखकर भी अनदेखा कर करते हुए चेहरे दूसरी तरफ कर लिए। पर इससे क्या होता है। मैंने उसे देख लिया था, उसने मुझे। मैं अनुमान लगा रहा था कि आखिर मछली कानून के जाल में फंस ही गई। मछेरे उसे निगलने के लिए कचहरी की ओर घसीट रहे हैं।

मुझे उसके प्रति सहानुभूति उमड़ आई। पर सहानुभूति प्रकट करने का यह कोई उचित स्थान नहीं था। अखबार से भी ज्यादा संवेदनहीनता पुलिस की वर्दी में छिपी होती है। छिपी होनी भी गलत है। चेहरे से ही टपकती है संवेदनहीनता। इस तरह बिना दुआ-सलाम या परिचित होने का आभास दिए मैं आगे निकल तो गया पर दृश्य मुझे याद रहा... मेरी आंखों में उतर आया।

प्रिय पाठक। तीसरा दृश्य बम्बइया फिल्मों की तरह सुखांत है।

रोज गार्डन में गुलाब का मेला लगा था। उस मेले में खुबसूरत चेहरों और जोड़ों की भीड़ लगी थी।

इसी भीड़ में एक जोड़े को देखकर मैं हैरान हो उठा। वही... बिल्कुल वही चेहरा था... खिलखिलाता हुआ, जिसे कुछ दिन पहले पुलिस के जवानों से घिरे हथकड़ी में बंधे युवक के रूप में देखा था। उसकी पत्नी भी खुश थी और वह उसके बालों में फूल लगा रहा था जिसे वह सार्वजनिक रूप से लगवाने से झिझक रही थी। इसी चुहलबाजी में मेरा ध्यान उस ओर गया था। यह चेहरा? एक-साथ तीन-तीन बार देखा चेहरा मैं कैसे भूल सकता था।

इस बार उसने चेहरा छिपाने की कोशिश नहीं की। मेरे पास आया और कहने लगा–यह चेहरा कैसे खिलखिला रहा है, यही सोच रहे हैं, न जनाब। मेरे हाथों में गुलाब कैसे है, यही देखकर हैरान हैं न, आप। यहां सब चलता है। इसलिए एक गरीब मां का बेटा ही इस समाज में मातम क्यों मनाता फिरे? क्यों न दूसरों की तरह हंसे-खेले, जिये।

–और मां की याद?

–ईमानदारी की तरह मां भी मर गई, जनाब। अब तो बेईमानी सामने है, उसे गुलाब भेंट करने जा रहा हूं, इतना कहते-कहते वह आगे बढ़ गया।

मैं भौंचक्का इन तीन दृश्यों को सोते-जागते, उठते-बैठते देखा करता हूं और भीड़ में अब उस चेहरे को अलग करके देखना भी कठिन हो गया है। •

सम्पर्क-94160-47075

डेरों व मठाधीशों के 'प्रवचन-उपदेश'

सांस्कृतिक शून्यता में क्षणिक राहत

□ बूटा सिंह सिरसा

सिरसा डेरा के मामले में कोर्ट का फैसला आया है। उसके बाद हुई हिंसा व आगजनी से जानमाल के नुकसान की खबरें मीडिया ने चटखारे ले लेकर दिखाई हैं। लेकिन डेरों में लोगों की अंध आस्था के बुनियादी कारणों को समझने में मीडिया ने कोई दिलचस्पी दिखाई नहीं दी। समस्या के बुनियादी पहलुओं पर गंभीर मंथन की जरूरत को महसूस करते हुए 'देस हरियाणा' में इस बहस-चर्चा की शुरूआत कर रहे हैं। बुटा सिंह सिरसा व मुकेश के लेखों में महत्वपूर्ण संकेत हैं। इस बहस को आगे बढ़ाने के लिए आलेख आंमत्रित हैं।-सं.

सामाजिक आर्थिक संकट: भारतीय समाज का बंटवारा सिर्फ वर्गीय आधार पर ही नहीं बल्कि जातीय आधार पर भी है। समाज में अनेक जातियां हैं तथा अधिकतर संसाधनों पर उच्च जातियां ही काबिज हैं। देश की आजादी के 70 वर्ष बाद भी आर्थिक असमानता कम होने की बजाय बढ़ी है। छुआछूत की बेशक पहले वाली स्थिति नहीं है लेकिन जातीय उत्पीड़न कम नहीं हुआ अब भी निम्न जातियों के साथ भेदभाव होता है । उनको सामाजिक न्याय नहीं मिला। भक्ति लहर ने जिस प्रकार से सामाजिक भेदभाव व कर्मकांडों के खिलाफ आवाज उठाई थी अंग्रेजों के आने के बाद पूरी योजना के अंतर्गत भक्ति लहर के उद्देश्यों को छोड़ दिया गया। भक्ति लहर के समय पैदा हुए सिक्ख धर्म ने भी भक्ति लहर के आदर्शों सामाजिक न्याय, समानता, श्रम की गरिमा आदि आदर्शों को त्याग दिया।ज्यादातर धार्मिक स्थानों पर भी यानी उनकी प्रबन्धक कमेटियों पर भी उच्च जातियों के लोग ही काबिज हैं। पंजाब में तो अनेक गांवों में कई-कई गुरुद्वारे हैं व कुछ तो बने ही जाति के आधार पर हैं। इन स्थितियों ने देश में अनेक डेरों को पैदा होने को स्थान दिया व सामाजिक तौर पर हाशिये पर रखे जाने वाले लोग इन डेरों के लिए भीड़ बने। उनको महसूस होता है कि डेरों में उसके साथ जातीय आधार पर भेदभाव नहीं होगा व उसको सामाजिक न्याय मिलेगा। यह समस्या सिर्फ निम्न जातियों के लोगों तक ही सीमित नहीं बल्कि उच्च जातियों के आर्थिक तौर गरीब लोगों की भी अपनी समस्याएं हैं जैसे कि नशे, बेरोजगारी, भ्रूण हत्या, पीढ़ी का अन्तराल आदि। आर्थिक, सामाजिक व मानसिक तौर पर टूट चुके लोग इन समस्याओं को समग्र रूप में देखने की बजाय टुकड़े-टुकड़ों में देखते हैं व उनको लगता है कि शायद डेरे में इन समस्याओं से मुक्ति मिल जाएगी। जबकि डेरे व बाबावाद आस्था के नाम पर व्यक्ति की चेतना को कुंद करने का ही काम करते हैं। मूलत: धर्म की भूमिका भी आम लोगों के पक्ष में होने की बजाय शोषणकारी व्यवस्था को बचाने की ही होती है। वास्तव में यह समस्याएं पूंजीवादी व्यवस्था की देन हैं व उसके रहते यह हल नहीं हो सकती।

शिक्षा व्यवस्था : हमारे देश में सभी लोगों तक शिक्षा की लौ नहीं पहुंची तथा आज भी बहुत सारे लोग निरक्षर हैं। ज्यादातर अनपढ़ लोग इन डेरों के पैरोकार हैं। अनपढ़ लोगों के डेरे के पैरोकार बनने का कारण तो उसकी अनपढ़ता को कह सकते हैं लेकिन बहुत सारे पढ़े लिखे व यहां तक कि दुकानदार, कर्मचारी, डाक्टर व शिक्षक भी डेरे के पैरोकार हैं तो इसका कारण क्या? इस सब की जड़ें हमारी शिक्षा व्यवस्था में है सत्ता द्वारा दी जा रही शिक्षा द्वारा बेहतर मानव बनाने की बजाय पैसे कमाने की मशीनें ही तैयार की जा रही हैं। तर्क व वैज्ञानिक विचारधारा की शिक्षा देने की बजाय अन्धविश्वास सिखाये जा रहे हैं। नैतिक मूल्यों के नाम पर पाठ्यक्रम में अन्धविश्वास व पोंगापंथी विचारों को शामिल किया जा रहा है। देश में एक जैसी शिक्षा व्यवस्था की बजाय सभी धर्मो, डेरों व बाबाओं ने अपने शिक्षण संस्थान चला रखे हैं। इन शिक्षण संस्थानों में बच्चों की सोच को व्यापक बनाने की बजाय उनका ब्रेनवाश करके उनकी सोच को संकुचित किया जा रहा है।

राजनैतिक कारण : देश आजाद होने के बाद संविधान में देश में लोकतान्त्रिक प्रणाली को अपनाया गया। यह प्रचार किया गया कि लोग अपनी सरकार खुद चुनते हैं। आजादी के बाद से विभिन्न राजाओं ने व उनके परिवार के सदस्यों ने भी चुनाव लड़ना शुरू कर दिया। पहले राजशाही से सत्ता उनके पास थी अब वे लोकतान्त्रिक तरीकों से सत्ता में शामिल हो गये। धीरे धीरे इस बुर्जुआ लोकतंत्र ने अपना जन कल्याणकारी चोला भी उतार दिया तथा सभी पूंजीवादी राजनैतिक दलों के अंदर एक इलीट वर्ग पैदा हो गया जो बारी बारी सत्ता पर काबिज होते रहे तथा उसके पास इतनी पूंजी हो गयी कि वो चुनाव जीतने के हर प्रकार से प्रबंध करने लगे। उन्हीं तौर तरीकों में पैसा, नशा, गुंडागर्दी व आस्था के नाम पर धर्म तथा डेरावाद भी प्रमुख तौर शामिल हैं। राजनैतिक पार्टियों के नेताओं द्वारा डेरावाद तथा बाबावाद को पूरी तरह से प्रोत्साहित किया जाता है ताकि मतों की फसल के लिए उपजाऊ जमीन तैयार की जा सके। नेता लोग इनके आडम्बरों में शामिल होकर नतमस्तक होते हैं। जनता का पैसा इनको दान के नाम पर देते हैं। पंजाब के क्रांतिकारी लोक गायक जगसीर जीदा अपने एक गीत में बोलते हैं 'संगत बेचदी वोटां ते संगतां नूं बाबे बेच गये।' यानी की चुनाव के समय अपने भक्तों की भीड़ के कारण इन बाबाओं की महत्वाकांक्षा भी बढ़ जाती है तथा नेता लोग इनके चक्कर काटते हैं। फिर इन बाबाओं द्वारा गुप्त तौर पर (कई बार खुले तौर पर) अपने भक्तों को विशेष राजनैतिक दल को वोट देने का फतवा जारी किया जाता है। फिर सरकारों द्वारा इनको हर प्रकार की छूटें दी जाती हैं। वी.आई.पी. सुरक्षा दी

जाती है तथा ये कानून को भी नहीं मानते।

भारत की दार्शनिक परम्परा : सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि जिस पुरातन संस्कृति को हम महान संस्कृति कहते हैं इस अन्धविश्वास, बाबावाद, डेरावाद की जड़ें भी उस संस्कृति में ही हैं। हमें भारतीय दर्शनशास्त्र का भी अध्ययन करना होगा जिसमें बुद्धिवाद, तर्क व स्वतंत्र चिन्तन का विरोध किया गया है। हमारे धर्मशास्त्र-प्रणेताओं ने जिन बातों के प्रति अतिशय घृणा का भाव व्यक्त किया है उनमें 'स्वतंत्र चिन्तन' का प्रमुख स्थान है। उनका उद्देश्य था कि आस्था की सामान्य परिधि से बाहर चिन्तन नहीं किया जाये; अथवा उनके कथनानुसार उस चिन्तन को अमान्य घोषित कर दिया जाये, जो शस्त्र सम्मत न हो। स्वतंत्र चिन्तन व बुद्धिवाद का विरोध करने का बड़ा कारण शोषण पर आधारित समाज को कायम रखना था। उसको कायम रखने के लिए हिंसात्मक उपायों के अतिरिक्त एक और चीज की आवश्यकता होती है। सचमुच बड़े पैमाने पर अन्धविश्वास। कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में अन्धविश्वासमूलक युक्तियों का सहारा लेने के अनेक सुझाव दिए हैं। उन्होंने ऐसे साधनों को अपनाने की सलाह दी है जिनका दोहरा उद्देश्य था। वे न केवल जनता के बीच अन्धविश्वास भी उत्पन्न करते थे बल्कि अन्धविश्वास के विरोध में यथार्थ और ठोस कदम उठाने वाले प्रचारकों का शारीरिक रूप से सफाया करने की ओर भी लक्षित थे। वे लिखते हैं 'शंकाएं उठाने वालों को कोई विषैला पेय पिला दिया जा सकता है अथवा उनके शरीर पर विषैला जल छिड़का जा सकता है ताकि वे बेहोश हो जाएं और तब गुप्तचर प्रचार कर सकते हैं कि उन पर देवता का कोप था इसलिए उनकी ऐसी दशा हुई।' मनु ने भी स्वतंत्र चिन्तन करने वालों का विरोध किया है। उन्होंने स्वतंत्र चिंतक के लिए 'हैतुक' शब्द का प्रयोग किया है।

' ....हैतुकान्बकबृत्तीश्चवाड्.मात्रेणापि नार्चयेत्।' अर्थात स्वतंत्र चिंतकों और दुरंगी चाल चलने वालों से बातचीत भी नहीं करनी चाहिए।

आज भी शासन-सत्ताएं लोगों की व्यापक एकता बनने से रोकने के लिए धर्म व नैतिक मूल्यों के नाम पर अन्धविश्वास फैलाने का कार्य करती हैं। सरकारी पैसे से धार्मिक यात्राएं करवाना, धार्मिक स्थानों को सभी प्रकार के टैक्सों से छूट देना, बाबाओं को प्रोत्साहित करने जैसे कार्य करती हैं। ('भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत' -देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय)

मीडिया की भूमिका : सिरसा डेरे के मामले में सी.बी.आई. कोर्ट का फैसला आने के बाद प्रिंट व इलैक्ट्रानिक मीडिया प्रतिदिन सनसनीखेज समाचार पेश करके अपने आपको क्रान्तिकारी भूमिका में पेश कर रहा है। लेकिन आज से पन्द्रह वर्ष पहले सिरसा के 'पूरा सच' सांध्य दैनिक के पत्रकार रामचन्द्र छत्रपति की हत्या होने पर भी कुछ प्रतिबद्ध लोगों को छोड़कर ज्यादातर मीडिया में रहस्यमय चुप्पी थी। आज भी मीडिया अंधविश्वासों के विरुद्ध लड़ते हुए शहीद होने वाले तर्कशील कार्यकर्ता नरेंद्र दाभोलकर की हत्या पर चुप है। चैनलों पर राशिफल, ज्योतिष व बाबाओं के दरबारों का सीधा प्रसारण चल रहा होता है। चैनलों द्वारा बाबा के उत्पादों के विज्ञापन देशभक्ति, स्वदेशी व हर्बल आदि के नाम से दिखाए जा रहे हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि मीडिया पर नैगम घरानों का कब्जा है तथा मीडिया के भी वर्गीय हित हैं ।

प्रगतिशील आंदोलनों का कमजोर होना : 1990 में लागू की गयी आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण की नीतियों से आम जनता के जीवन की दुश्वारियां बढती चली गयी। अमीर गरीब के बीच में खाई बढती चली गयी। दूसरी तरफ इस दौर में जनता के जीवन से जुड़े इन मुद्दों पर संघर्षरत जनवादी आन्दोलन कमजोर होता चला गया। ट्रेड यूनियन आन्दोलन भी वैचारिक मुद्दों की बजाय अर्थवाद का शिकार हुआ व वैचारिक चेतना का कार्य बहुत कम हुआ। जनता के बीच प्रगतिशील सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अभाव रहा। सांस्कृतिक शून्यता में डेरों व मठाधीशों के 'प्रवचन-उपदेश' थोड़े समय के लिए ही सही लोगों को मानसिक सांत्वना देते हैं।

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त बहुत से अन्य कारण हो सकते हैं उनको समझना होगा। जरूरत इन समस्याओं की जड़ों को समझने व इस पर चोट करने की है। जैसा कि दुष्यंत कुमार लिखते हैं :

आज यह दीवार पर्दों की तरह हिलने लगी
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए

•

सम्पर्क -9813416960

अंधविश्वास क्या है?

- **प्रमाण के होते हुए भी विश्वास न करना अथवा प्रमाण के न होते हुए भी विश्वास करना।**
- **किसी एक रहस्य का स्पष्टीकरण किसी अन्य रहस्य द्वारा प्रस्तुत करना।**
- **इस बात में विश्वास करना कि संसार का कारोबार दैवयोग अथवा सनकी तरीके से चल रहा है।**
- **कार्य-कारण के बीच वास्तविक संबंध की अवहेलना करना।**
- **विचार, आकांक्षा, उद्देश्य, रूपरेखा को प्रकृति के अस्तित्व का कारण बनाना।**
- **विश्वास करना कि बुद्धि ने पदार्थ की उत्पत्ति की तथा बद्धि ही इसका संचालन करती है। बल को पदार्थ से पृथक मानना अथवा पदार्थ को बल से पृथक मानना।**
- **चमत्कारों, मंत्र-तंत्र तथा भाग्य, सपनों तथा भविष्यवाणियों में विश्वास करना।**
- **अंधविश्वास अज्ञानता की नींव पर टिका होता है, धर्म इसकी अधिरचना होता है तथा दुराशा इसका गुम्बद होती है।**
- **अलौकिक में विश्वास करना।**
- **अंधविश्वास अज्ञान का शिशु होता है तथा कष्टों का जन्मदाता होता है।**

साभार-अंधविश्वास, राबर्ट ग्रीन इंगरसोल, जनवरी 2006, अनु. सोम प्रकाश चसवाल

समाज में भेदभाव व जागरूकता के अभाव में उगते

समानान्तर सत्ता के द्वीप

□ मुकेश

साढ़े दस साल पहले रोहतक के करौंथा आश्रम व आर्य समाजियों में भी खूनी संघर्ष हुआ था। सेना बुलाकर आश्रम को खाली कराया गया था। बाबा की फौज व भारतीय फौज अपने-अपने मोर्चों पर तीन दिन तक डटी रही थी। पुलिस के साथ बीच-बीच में झड़पें हुई। एक नवयुवक, चार महिलाएं व एक बच्चे को जान से हाथ धोना पड़ा था। आसाराम बापू की भी गिरफ्तारी आसानी से नहीं हुई थी। आसाराम बापू के जेल में होने के बावजूद भी अनेक गवाहों की हत्याओं का सिलासिला जारी है। अकूत सम्पति के मालिक बाबा रामदेव के स्वागत में कांग्रेस के केन्द्रीय मन्त्री आगवानी के लिए पहुंचे थे तो भाजपा सरकार ने तो उन्हें ब्रांड अम्बेस्डर बनाकर मंत्री का दर्जा दिया हुआ है। हरियाणा की सरकार ने जैनमुनि तरूण सागर का प्रवचन विधानसभा में करवाया था और जैनमुनि ने धर्म व राजनीति का सम्बन्ध पति व पत्नी के समान बताया था कि धर्म द्वारा राजनीति पर अंकुश रखना उसी तरह जरूरी है, जिस तरह पत्नी पर पति का अंकुश जरूरी है।

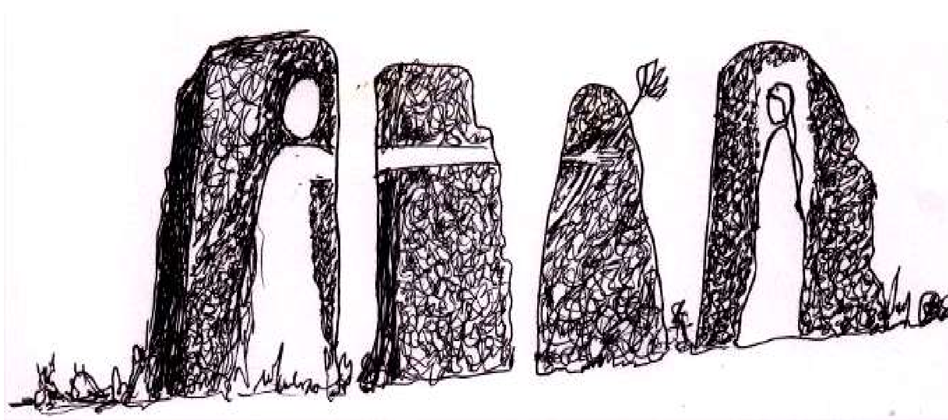

दरअसल सत्ता के ये सामानान्तर टापू हमारी व्यवस्था की ही देन हैं। सत्ता के ये समानान्तर द्वीप एक ही दिन में पैदा नहीं हुए। इन्हें सालों से खाद-पानी मुहैया करवाई जा रही है। अरबों-खरबों की सम्पत्ति के वारिस बनकर जब ये तांड़व रचाते हैं तो बस यह कहकर पल्ला झाड़ लेते हैं कि एक दिन पाप का घड़ा तो फूटना ही था। बूंद-बूंद से जब घड़ा भर रहा था तो हम क्या कर रहे थे? क्या अगला घड़ा भरने का इंतजार हाथ पर हाथ रखकर करेंगे?

बाबा लोग डेरे के नाम पर आलीशान आठ-आठ एकड़ में रंगमहल और 'गुफा' बना रहे हैं। मोहमाया से दूर रहने का उपदेश देने वाले अकूत सम्पत्ति के मालिक बाबा ऐय्याशी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हर तरफ से हताश व त्रस्त जनता धर्म के मुलम्मे से आकर्षित होकर शांति व अगले जन्म को बेहतर बनाने के लिए इन बाबाओं के प्रपंच में फंसती है।

हमारी सामाजिक व्यवस्था में जाति, धर्म व लिंग आधारित भेदभाव व्याप्त है। पितृसत्तात्मक व सामंती समाज व्यवस्था में दलितों, अल्पसंख्यकों व महिलाओं के लिए सम्मानपूर्वक जीने का रास्ता नहीं बचा हुआ। सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था में उनकी व्यक्ति के तौर पर स्वयं की कोई पहचान नहीं है। रोज-रोज के जीवन को चलाने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। यही कारण है कि इन डेरों में महिलाएं, दलित व वंचित आबादियां ही ज्यादा जाती है।

इन डेरों में उच्च कोटि के संगीत के साथ होने वाले सत्संग व मजलिसों का आकर्षण उन्हें बांधे रखता है, जीवन की असंतुष्टि को लेकर निराश लोग स्वर्ग का सपना संजोये इन बाबाओं के प्रवचनों के छीटों से राहत महसूस करते हैं। इन बाबाओं को अपना भगवान मानकर इनके मुंह से निकली एक-एक बात को रामबाण मानकर मर मिटने को तैयार रहते हैं। इनके लिए बाबाओं के लिए मरना खुदा के राज में अपनी सुखद स्थिति को निश्चित करना है, कुर्बानी देना है। इन लोगों का खाना-पीना, ओढ़ना-बिछौना सब बाबा ही होते हैं। इस जगत को मिथ्या मानकर अपनी औकात से बढ़कर गुप्त दान देते हैं। कई परिवार तो अपनी सम्पूर्ण जमीन-जायदाद दान देकर परिवार समेत डेरे में ही रहने लगते हैं। डेरों की जमीन पर खेती करते हैं।

बाबा आधुनिक मैनेजमैन्ट के धुरंधर खिलाड़ी हैं, जो लगभग मुफ्त मानव श्रम से उत्पादित फसलों को डेरे में ही बेचते हैं। साध-संगत पवित्र मानकर डेरे की एक-एक चीज को खरीदती है। यहां तक कि एक किलो गुड़ की बोली एक करोड़ भी लगती है, जिसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर आगे लाखों में दिया जाता है। दुकानदार गुड़ के छोटे टुकड़े को अपनी दुकान के गुड़ में मिला लेता है। इस प्रकार

बाबाओं का व्यवसाय फलता-फूलता रहता है।

सत्संग, मजलिस, मासिक भण्डारा, बाबा के जन्मदिन व मठ स्थापना दिवस के नाम पर बड़े भण्डारों के माध्यम से इनके विचारों को खाद पानी देने का काम सतत रूप से होता रहता है। बाबा की अन्ध श्रद्धा के चलते लाखों लोग बाबा का इशारा पाते ही एक जगह वोट डालते हैं। यही ताकत राजनेताओं को बाबा के डेरे की चौखट पर नतमस्तक होने के लिए मजबूर करती है। अनुयायियों को उनके 'बाबाओं' के समकक्ष नहीं देखा जाना चाहिए, ये महेनतकश जनता है। इनको तो 'बाबा' इस्तेमाल करते हैं। यदि हमारे समाज में व्याप्त भेदभाव के चलते इन लोगों को न्याय नहीं मिलेगा तो ये लोग डेरों में ही जायेंगे। उनकी भावनाएं समझकर सहानुभूति का हाथ उनकी तरफ बढ़ाना चाहिए। ये उत्पीड़ित तबका है जिसे हम ताने देकर समाज से छिटकायें नहीं।

एक बात और समझने की है कि डेरों के राजनैतिक विंग, मीडिया विंग व अन्य उच्च स्तरीय कमेटी में पदाधिकारी हमेशा मध्यम वर्ग व उच्चजाति के लोग ही होते हैं। इन तबकों को तो यहां भी ईमानदारी व गहरी श्रद्धा के तहत मेहनत ही करनी होती है।

सत्ता के ये द्वीप जनता की जगरूकता के अभाव में उगते रहते है। जब तक समाज में भेदभाव जारी रहेगा तब तक भविष्य में भी अनेक बाबा पैदा होंगे। एक सतत अभियान चलाने की जरूरत है जिसमें तर्कशील एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के नागरिक पैदा हों। तर्कशील वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करके ही जनता को अन्धविश्वास की गहरी खाई से बाहर निकाला जा सकता है।

सम्पर्क -9416916596

•

बीच बहस में

भक्ति और भक्ति आंदोलन

□ डा. सेवा सिंह

डा. सेवा सिंह की भक्ति और भक्ति आंदोलन पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, इनके अध्ययन के निष्कर्षों ने भक्ति और भक्ति आंदोलन संबंधी चिंतन को एक नई दिशा प्रदान की है। उनकी आधार प्रकाशन पंचकूला से सद्य प्रकाशित पुस्तक 'भक्ति और भक्ति आंदोलन' के निष्कर्षों को यहां प्रस्तुत कर रहे हैं, जो एक नई बहस को जन्म देंगे। आशा है कि इस दृष्टि से पाठक फिर से एक बार भक्ति आंदोलन संबंधी विमर्श पर ध्यान देंगे। - सम्पादक

मुगलों के प्रारंभिक प्रशासनिक दौर के उदीयमान हिंदू साहूकारों के वर्चस्व में, उत्पादनशील श्रेणियों पर नियंत्रण बनाए रखने के उद्देश्य से भक्ति आंदोलन का उद्भव और विकास हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास इस भक्ति आंदोलन के प्रतिष्ठापक सूत्रधार हैं।

भक्ति ने वर्गीय हितों के नज़रिए से दो उद्देश्यों की पूर्ति की है-

एक, तथाकथित अधजन्मा शिल्पी बौद्धिकों के प्रतिरोधमूलक स्वतंत्रचेत्ता विचारों को, जिन्हें हम जनविमर्श कहते आ रहे हैं, बड़ी क्रूरता से निरस्त करते हुए उनका भक्तिवादी आत्मसातीकरण किया गया है।

दूसरे, उत्पादनशील श्रेणियों की एकजुटताओं को विखंडित किए रखने के उद्देश्य से हिंदू साहूकार-अभिजन के संरक्षण में लोकप्रिय प्रवक्ता बौद्धिकों के नाम पर जातिवादी भिन्न-भिन्न पंथक धर्मगठन स्थापित किए गए हैं। कबीरादि के जनविमर्शों के भक्तिवादी नवनिर्मित संकलन इन पंथों के धर्मग्रंथ हैं। कबीर अब धर्मगुरु हैं। उन्हें विष्णु के अवतारों की सूची में शामिल कर लिया गया है। तुलसीदास जिन विमर्शों का खंडन करते हुए भक्ति में बाधक बता रहे थे, वे विमर्श अब भक्तिवादी समादृत पोथियों के रूप में, कलियुग के दोषों से मुक्ति का कारगर साधन हो गए हैं।

यहां गौरतलब है कि ब्राह्मणीय विचारधारा के इस परिप्रेक्ष्य में जो भक्ति एक आंदोलन के रूप में प्रासंगिक और कारगर होती गई है, उसके केंद्र में न कृष्ण भक्ति है और न ही रामभक्ति है। इस दौर की रामभक्ति, कृष्ण भक्ति आदि अन्य अनेक भक्ति परंपराएं काव्यरूपों, सांस्कृतिक-धार्मिक रूढ़चर्याओं में ढलकर मंदिर-द्विज-केंद्रित और अकादमिक होती गई हैं, जबकि कबीरादि के नाम पर संकलित वाणियां निरंतर अद्यतन भरपूरता से गतिशील हैं। इन वाणियों की एक और मौखिक परंपराएं कीर्तनीय मंडलियों द्वारा संवर्धित, संशोधित होते हुए जनसामान्य में ब्राह्मणीय विचारधारा का प्रचार-प्रसार करती आ रही हैं, दूसरी ओर ये वाणियां, पंथक

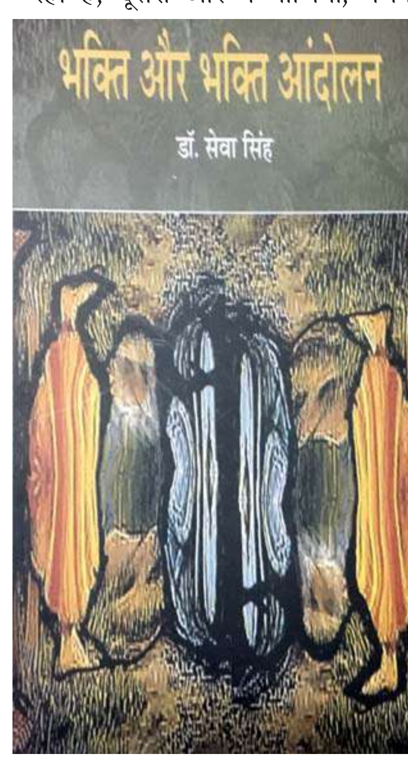

ग्रंथों के समादृत आनुष्ठानिक माध्यमों से जनसामान्य के समाज-सांस्कृतिक धार्मिक जीवन का अभिन्न अंग हो गई हैं। परिणामस्वरूप इन वाणी ग्रंथों की भक्ति के कर्मवाद, आत्मवाद, जन्मना जातिवाद, पितृसत्ता, मोक्ष आदि ब्राह्मणीय विभ्रमों की गिरफ्त में तमाम श्रमजन्य उत्पादनशील, सेवाकर्मी उत्पीड़ित वर्ग शोषण और दमन को शिरोधार्य किए हुए हैं, जबकि कर्मपाश अथवा पुनर्जन्म के अंतर्गत वर्चस्वी वर्ग, उत्पीड़न के अपराधबोध से मुक्त होकर वर्णधर्मी सोपानात्मक व्यवस्था के कार्यान्वयन को सुरिक्षत किए हुए हैं।

इसप्रकार भक्ति विचारधारा उत्पीड़क और उत्पीड़ित को एक सांझे समन्वय की एकसूत्रता प्रदान करते हुए असंतोष, प्रतिरोध और विद्रोह को कुंठित और आत्मसात करती आ रही है।

कबीरवाणी में दर्ज एक क्रांतिकारी के भक्तिवादी आत्मसातीकरण का एक उदाहरण देखिए-

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउं।।
तो तो करै त बाहुड़ों, दुरि दुरि करै तो जाउं।
ज्यूं हरि राखै त्यूं रहौं, जो देवै सो खाउं।।

यह है ब्राह्मणीय विचारधारा का विमोहक तंत्रजाल।

अनावश्यक विस्तार के दोहराव से संकोच करते हुए, सूत्र रूप में प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष हैं-

- भक्ति ब्राह्मणीय विचारधारा का कारगर संप्रेषणीय उपस्कर है।

- भक्ति ने पूर्वजन्म अथवा कर्मपाश की अवधारणाओं को पुष्ट करते हुए जन्मना जातिवाद को दैवी प्रामाणिकता प्रदान की है।

- उत्पीड़ित वर्गों के प्रतिरोधों को निरंतर कुंठित किया गया है।

- दासता और दीनता के भक्तिमयी उच्च आदर्श में दमन की यथास्थिति का आत्मसातीकरण हुआ है।

- भक्तिवादी मोक्ष की पारलौकिकताओं में वास्तविक उत्पीड़न और दमन एक विभ्रममूलक वस्तुस्थिति है। भक्तिवादियों के अनुसार 'उत्पीड़न' गत जन्म के अभिशापों से मुक्त होने की एक प्रक्रिया है। 'उत्पीड़न' के कतई कोई परिस्थितिजन्य यथार्थ कारक नहीं हैं, जिन्हें दूर किया जा सके।

- पुनरुत्पादन की रतिजन्य लैंगिक संबद्धताओं को भक्ति के साधना मार्ग की निर्णायक बाधा सिद्ध करते हुए तमाम उत्पादनशील श्रेणियों के साथ-साथ स्त्री वर्ग पर भी ढेरों अमानवीय अशक्ताएं आरोपित कर दी गई हैं।

- भक्ति के नाम जप, संकीर्तन आदि तमाम उपस्करों के बरक्स मानवीय मूल्य और मानवीय अस्मिताएं गौण होती गई हैं।

- धर्म के रूप में प्रचारित-प्रसारित जिन मिथकीय और अंधविश्वासपूर्ण परंपराओं का कबीरादि के विमर्शों में निषेध किया जाने लगा था, भक्ति आंदोलन के दौरान उनका पुनरुत्थान हुआ है।

- शोषित-जन में वर्गीय कार्रवाइयों का जो विवेक उजागर हो रहा था, उस वर्गीय धार को भक्ति का समन्वयवाद और समधर्मभाव कुंद करता आ रहा है।

- हिंदू-सौदागरी-साहूकारों के व्यापारिक और समाज-सांस्कृतिक वर्चस्व की महत्वाकांक्षाओं के मद्देनजर, तथाकथित कलियुग रूपी 'मलेच्छ' (मुगल) सत्ताओं के पतन और लिहाजा, औपनिवेशक स्थापनाओं की कशमकश में भक्ति की उत्प्रेरणाओं के माध्यम से जनसामान्य की शमूलियतें यकीनी कर ली गई थीं।

आखिर, इस संदर्भ में हमें ब्राह्मणीय विचारधारा की अभूतपूर्व क्षमताओं को कभी भूलना नहीं होगा कि किस प्रकार ब्राह्मणीय राज्य-व्यवस्थाओं के उत्पीड़न से त्रस्त यहां के किसानों, शिल्पियों, तमाम जन समुदायों ने आप्रवासियों की प्रशासनिक स्थापनाओं का मार्ग प्रशस्त कर दिया था, पर अब भक्ति आंदोलन के माध्यम से ब्राह्मणीय विचारधारा में दीक्षित कर दिए जाने पर वे तमाम उत्पीड़ित वर्ग इन सत्ताओं को उखाड़ देने की लड़ाइयों में ब्राह्मणीय वर्चस्व के पक्षधर हो गए थे। ●

भक्ति और भक्ति आंदोलन, डा. सेवा सिंह,
आधार प्रकाशन पंचकूला(हरियाणा)

कबीर कथन

भक्ति करो ब्राह्मांड में

साखी - गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खैले दाव।
दोनों बपुरे बूडही[1], चढ़ी पत्थर की नाव।।

टेक - भक्ति करो ब्राह्मांड में साधु-
ऐसी भक्ति करो मन मेरे, आठ पहर आनंद में हो।

चरण - बामण तो मांगण[2] फंसग्या[3], बणिया फंसग्या धन में हो।
भोपा जाय मड़ी[4] में फंसग्या, नहीं देव मड़ी में हो।।

गिरी पुरी और भारती, पूज रहे पत्थर में हो।
जादू टोटका[5] मुठ[6] साधके, लोग लगे लूटन में हो।।

बाबा तो खावण में फंसग्या, चेला फंसा मुण्डन में हो।
जोगी जाय जंगल में घुसग्या, नहीं देव जंगल में हो।।

कहे कमाली कबीर की चेली, ढूंढ लिया सब खंड[7] में हो।
कहे कबीर सुणो भाई साधो, छोड़ दे पाखंड को हो।।

1. भूल में 2. मांगना 3. लगना 4. मंदिर (आश्रम) 5. जादू-टोना 6. जादू का एक तरीका 7. चारों ओर

हांसी में स्थित दरगाह चहार कुतब। प्रख्यात चार सूफी संतों का मकबरा । 'कुतब' शब्द आदर्श व्यक्ति प्रयोग होता है। यहां दफन महान सूफी संतों या कुतब जमाल उद दीन हांसवी, बुरहानुद् दीन, कुतुबुद्दीन मनुव्वर और नूरूद्दीन हैं। उस समय के कई मुस्लिम गणमान्य व्यक्तियों के मकबरे भी दरगाह में है जैसे में मीर आलम, बेगम स्किनर और मीर तिजारह, सुल्तान हांसी के हामिदुद्दीन के मुख्य रसद पहुंचाने वाला। आरम्भ में मकबरे शहर की एक छोटी सी मस्जिद के निकट स्थित थे, लेकिन बाद में फिरोज शाह तुगलक ने दरगाह के उत्तरी किनारे पर एक बड़ी मस्जिद बनवाई थी।

हांसी से बही सूफी विचारधारा

□स्वामी वाहिद काज़मी

आज हम भारत के जिस भू-भाग को हरियाणा नाम से जानते-मानते हैं, उस प्रदेश में केवल कुरुक्षेत्र ही धर्मक्षेत्र नहीं रहा है। सदियों तक यहां से सूफी विचारधारा भी दूर-दूर तक प्रवाहित रही है। शैख जलालुद्दीन थानेसरी (निधन सन् 1581-82 ई.) और हज़रत नानू शाह (निधन सन् 1650 ई.) जैसी महान सूफी विभूतियां थानेसर की ही थीं। तात्पर्य यह कि एक थानेसर ही नहीं हरियाणा के प्राचीन व ऐतिहासिक नगर और बस्तियां सूफी-संतों से भी आबाद रही है। हरियाणा में इतने अधिक सूफी-सन्त और दरवेश हुए हैं कि उन्हें लेकर एक विशदाकारी शोध-ग्रंथ लिखा जा सकता है।

हरियाणा के ऐतिहासिक नगर हांसी को आज भी इस बात के लिए बजा तौर पर गर्व करना चाहिए कि बाबा फरीद गंजेशकर (जन्म- सन् 1173, निधन- सन् 1265 ई.) जैसे महान सूफी धर्माचार्य के सबसे प्रिय, सबसे प्रतिष्ठित और संभवतया सबसे प्रथम शिष्य जो सज्जन बने वे खास हांसी नगर के ही थे। उनका नाम है - शैख जमालुद्दीन हांसवी। पं. रतन पिंडौरी ने उनकी उपाधि 'चहार कुतुब' लिखी है। यह उपाधि किसी सामान्य सूफी को नहीं, सिद्ध वली और परम साधक दरवेश के लिए ही प्रयुक्त होती है। सूफियों के यहां 'चहार कुतुब' उपाधि से विभूषित सन्त का दर्जा इतना बुलंद और उसकी प्रतिष्ठा का स्तर यह होता है कि उसे उसके नाम से नहीं, अलंकरण अथवा उपाधि के शब्द से याद किया और बयान किया जाता है। अत: सूफी ग्रंथों में आपका उल्लेख भी 'हजरत चहारकुतुब हांसवी' के रूप में ही मिलता है। आपके पीर अर्थात् दीक्षा-सद् गुरु बाबा फरीद गंजेशकर दिल्ली के सुविख्यात सूफी संत हजरत बख्तियार काकी (निधन सन् 1235 ई.) के शिष्य थे। हजरत बख्तियार का मजार दिल्ली के महरौली इलाके में प्रसिद्ध स्थल है। अपने सद्गुरु के सान्निध्य में साधनारत रहकर बाबा फरीद आगे और साधना के लिए हांसी आ गए थे। उसी दौरान जमाल साहब उनके सम्पर्क में आए और विधिवत् दीक्षा-सम्पदा से मालामाल हुए। बाद में बाबा फरीद साहब हांसी से अजोधन (पंजाब, अब पाकिस्तान में शामिल) जाकर बस गए। आप यहीं रहकर साधनारत रहे।

बाबा फरीद के हाथों सूफी पंथ में दीक्षित होने से पूर्व आप एक सुसम्पन्न संसारी व्यक्ति थे। बहुत बड़े सरकारी पदाधिकरी तो थे ही, धर्म-कर्म में अग्रणी होने के कारण आपको खरतीब यानी धर्म-व्याख्याता जैसा सम्मानपूर्ण पद भी प्राप्त था। किन्तु जब बाबा फरीद की शिष्यता ग्रहण की तो गांव, नगर, धन सम्पति सब कुछ त्याग कर फकीरी जीवन के अनुसार जिंदगी गुजारने लगे। आपकी जीवन सहचरी भी संत प्रवृति की फकीरी जीवन में रमीं महिला थीं। उन्हें सम्मानवश 'मादरे-मोमिना' (मोमिनों की माता) कहा जाता था।

बाबा फरीद के सर्वाधिक प्रिय शिष्य आप ही थे। उन्हें अपने इस प्रिय शिष्य से स्नेह ही नहीं, उन पर गर्व भी था। वे आपसे बहुत प्रसन्न रहते थे और बहुधा खुश होकर फरमाया करते थे - 'शैख जमाल मेरा जमाल (सौंदर्य) है।[1] बाबा फरीद जब भी अपने पीरों-मुर्शिद से मिलने दिल्ली जाते, आपको भी अपने साथ ले जाते थे। बाबा फरीद के दूसरे सर्वाधिक उल्लेखनीय शिष्य हुए दिल्ली के नामी सूफी संत हजरत निजामुद्दीन (जन्म-सन् 1238, निधन-सन् 1325 ई.) किन्तु बाबा फरीद ने सबसे पहले आपको ही अपना खलीफा चुनकर खिलाफतनामा (वह अधिकारपत्र जिसके द्वारा सूफी सद्गुरु अपने सबसे सुयोग्य शिष्य को अपना खलीफा अर्थात् जानशीन नियुक्त करते हैं) आप ही को प्रदान किया था। बाद में जब निजामुद्दीन औलिया भी बाबा फरीद के

दर्शनार्थ दिल्ली से अजोधन गए और उनसे विधिवत् दीक्षा की दौलत पाई। बाबा फरीद ने उन्हें भी खिल्अत खास से नवाजा। जब निजामुद्दीन औलिया साहब वापस दिल्ली के लिए रवाना हुए तो बाबा फरीद ने उनसे ताकीद की-'पहले हांसी जाना और वह सनद शैख जमालुद्दीन को दिखाना, फिर देहली का रुख करना और सनद काजी मुन्तखव को भी दिखाना।[2] इस घटना से पता चलता है कि आपके सद्गुरु भी आपको कितना मानते और मान देते थे। यहां तक कि वे आपके पीर होते हुए भी आपकी धर्मपत्नी को मादरे-मोमिन ही संबोधित करते थे।

बाबा फरीद के जीवनकाल में ही हांसी में आपका निधन हुआ। बाबा फरीद ने आपके अल्पायु पुत्र बुरहानुद्दीन को वहीं से नमाज पढ़ने की एक चटाई, डंडा और वैसा ही खिलाफतनामा भेजा, जैसा आपको भेजा गया था। इसप्रकार शैख बुरहानुद्दीन ही आपके गद्दीधारी बने। सूफी विचारधारा आगे प्रवाहित रही।

शैख जमालुद्दीन हांसवी से एक नए सूफी पंथ का प्रवर्तन हुआ, जो 'जमाली' कहलाया। आगे चलकर हांसी में अंकुरित व फले-फूले इस पौधे की शाखाएं दूर-दूर तक फैली। शैख जमाल साहब के वंशजों में से एक पहुंचे हुए दरवेश शाह मुहम्मद खलीलुर्रहमान जमाली हुए, जिन्हें वली कामिल बताया गया है, वे शैख जमाल के सज्जादानशीन भी थे। बाद में हांसी से सहारनपुर चले गए थे और वहीं 74 वर्ष की आयु में सन् 1342 हिजरी में निधन हुआ। वे फारसी, उर्दू व हिन्दी तीनों भाषाओं में कविता भी करते थे। नमूने के लिए एक पद का यह अंश देखें-

होरी खेलूंगी हांसी नगर में।
रैनी चढ़ी है जमाल के घर में।
या मन हू की झांझ बनायो।
उन ही के दफ सभी बाजायो।
रंग फना का मन में रचायो।
डाल गुलाल बका का सर में।
होरी खेलूंगी हांसी नगर में।[3]

खलीलुर्रहमान साहब के पुत्र वलीउर्रहमान सन् 1885 ई. में सरसावा (जिला सहारनपुर यू.पी.) में पैदा हुए और तीस वर्ष की उम्र में अपने पिता के खलीफा और हजरत शैख जमाली के सज्जादा नियुक्त हुए। पिता की भांति आपका भी तीनों भाषाओं में कविता करने का उल्लेख और कुछ काव्योदारहण भी प्राप्त होते हैं। आपकी एक भजन-रचना की आरंभिक पंक्तियां पेश हैं-

मन की खिड़की खोल रे मूरख
मन की खिड़की खोल।
न जा काशी, न जा मथरा
न जा मस्जिद, न जा गिरजा
मन के अंदर ढूंढ सजन को
मत फिर डांवा डोल।
न की खिड़की खोल दे मूरख,
मन की खिड़की खोल।[4]

सुना है सरसावा में आपका मजार विद्यमान है और पूजित-सेवित भी है। आज सहारनपुर और सरसावा में शायद कम ही लोग इस तथ्य से परिचित होंगे कि उनके यहां के इन सूफी-संतों का उद्गम हरियाणा का हांसी नगर है, वहीं से वह प्रेम-गंगा बही थी।

संदर्भ-

1. डा. शैलेश जैदी-अलखवानी (प्रस्तावना), पृ. 60
2. इशरत रहमानी-'ख्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया ताहा इस्लामी डाइजेस्ट (नयी दिल्ली), जून 1991'
3. पंडित रतन पिंडौरवी-हिन्दी के मुसलमान शुअरा, पृ. 466
4. वही, पृ. 467

-10, राज होटल, पुल चमेली, अम्बाला कैंट-133001

प्रेरक प्रसंग

करतार सिंह सराभा के बाबा उससे मिलने आए थे। काल कोठरी में वह फांसी के दिन का इंतजार कर रहा था। बाबा ने दर्द भरी आवाज में कहा, 'करतार काका, तुम इन कामों में क्यों पड़ गये? किसके लिए मर रहे हो, तुम ऐसी मौत? उनके लिए, जो तुम्हें गालियां देते हैं? तुम्हारे मरने से देश का कुछ लाभ हो, यह भी तो नहीं दिखता। और लोगों से तो तुम्हें मिलना क्या है?'

करतार सिंह शांति से बाबा की बात सुनता रहा। फिर धीरे से बोला, 'बापूजी! अपने गांव में एक...सिंह होता था, उसका क्या हाल है?'

'वह कब का प्लेग में मर चुका।' बाबा बोले।

'हुं...और...सिंह कहां है आजकल?'

'वह भी बेटा हैजे से मर गया।'

ऐसे ही दो, चार और प्रश्न, ऐसे ही दो-चार और उत्तर।

'तो बापू जी,' कुछ देर शांत रहकर करतार सिंह ने कहा, 'क्या आप यही चाहते हैं मैं ऐसे ही बिस्तर पर पड़ा-पड़ा प्लेग या हैजे से मर जाऊं। मैं तो यहां शेर की मौत मर रहा हूं बापूजी। आपको तो इस बात पर गर्व होना चाहिए।'

साभार-आजादी या मौत, वेद प्रकाश 'वटुक' नवम्बर 2015

दिनेश हरमन की गज़लें

मैं लिखता हूँ क्यूँकि मैं अपनी रचनाओं में अपने आप को तलाश करता हूं। मुख्यत: ग़ज़ल विधा पर काम कर रहा हूं और ग़ज़लों में नए शब्द नए विषय व नए प्रयोगों का पक्षधर हूं। प्राथमिकता की बात करें मेरी कोशिश यही रहती है कि कुछ सार्थक व समकालीन विषयों पर लिखा जाए लेकिन ग़ज़ल का शेर कभी भी सोच कर नहीं लिखा जाता, कई बार घंटों कागज कलम ले कर ख्यालात की सैर के बाद भी बिना किसी शेर के लौटना पड़ता है और कभी कभी सोते हुए में भी बिना किसी कोशिश के शेर उतर आता है, इसलिए अपने हिसाब से और अपनी प्राथमिकता के अनुरूप लिख पाना सम्भव नहीं है फिर भी मेरी कौशिश रहती है कि समकालीन विषयों पर लेखन किया जाए । -दिनेश हरमन

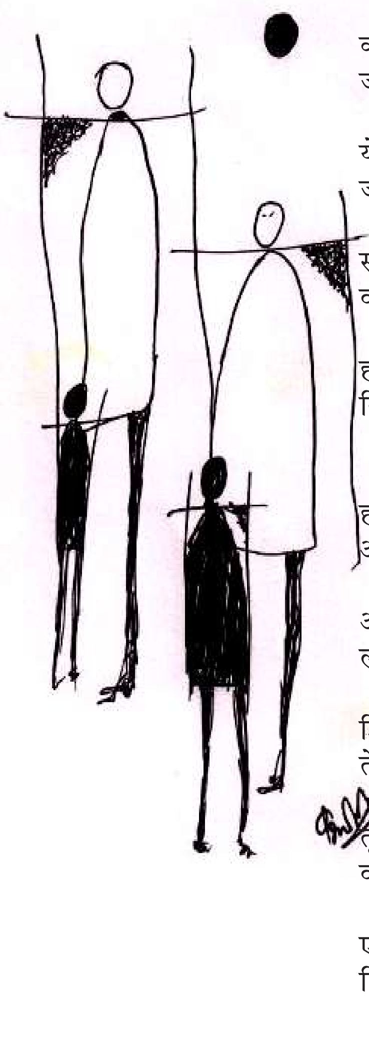

1

कभी दरों से कभी खिड़कियों से बोलेंगे
सड़क पे रोको गे तो हम घरों से बोलेंगे

कटी ज़बां तो इशारे करेंगे आंखों से
जो सर कटे तो हम अपनी धड़ों से बोलेंगे

ये आसमान उन्हीं के सुनाएगा किस्से
जो अपनी बात को अपने परों से बोलेंगे

सवाल कर ही लिया है तो अब सम्भल जाओ
वो अब ज़बां से नहीं लाठियों से बोलेंगे

हमारा नाम भी लिख लीजे अपनी गोली पर
कि अब निकल के हम अपनी हदों से बोलेंगे

2

हर तरफ ज़ुल्म है आतंक है तबाही है
और सितम ये है कि रोने की भी मनाही है

अ हुकूमत न सितारों की बात कर इनसे
लोग प्यासे हैं, तेरे हाथ में सुराही है

सिर्फ मैंने तुझे गूंगा नहीं कहा हाकिम
तेरी चुप्पी भी इसी बात की गवाही है

तू भले लाख छुपा ले तेरे गुनाहों को
वो ख़ुदा है वो हरिक ज़ुल्म देखता ही है

एक मुद्दत से तले जा रहे हैं हम 'हरमन'
ज़िन्दगी जैसे कोई तेल की कड़ाही है

3

हम रोज़ नए मुद्दे उठाने में लगे हैं
और वो हैं कि मुद्दों को भुनाने में लगे हैं

जो लोग परिंदों को उड़ाने में लगे हैं
गुलशन को बियाबान बनाने में लगे हैं

ये फूल जो अर्थी को सजाने में लगे हैं
माली का लिया क़र्ज़ चुकाने में लगे हैं

तुमने तो गिरा डाली थी लम्हे में इमारत
हम अर्से से मलबे को उठाने में लगे हैं

कुछ को तो हक़ीक़त में मुहब्बत है वतन से
कुछ लोग फ़क़त शोर मचाने में लगे हैं

4

ताक़ पर रक्खा गया तख़्त हजारा होगा
जब किसी हीर ने रांझे को पुकारा होगा

अहले दुनिया हमे ढारस की ज़रूरत कब है
हमको पहले से ,ख़बर थी कि ख़सारा होगा

मेहंदियां दौरे गुज़िश्ता की हैं इतना कह कर
उसने टैटू पे मेरा नाम उभारा होगा

सिर्फ इक बार हमें जान कहे जाने जां
फिर हमें जान से जाना भी गवारा होगा

वो जो उस दौर में मजनू का हुआ था 'हरमन'
इश्क ए लैला में वही हाल तुम्हारा होगा

5

ख़्याले यार जब भी फ़िक्रे दुनिया से बड़ा होगा
वही सोहणी वही दरिया वही कच्चा घड़ा होगा

तुम्हारी याद की ऊँगली पकड़ कर घूमे है अब तक
हमारा दर्द भी कब जाने पांवों पर खड़ा होगा

यहां बेहोश को भी देखने कोई नहीं रुकता
निकल जाते हैं सब कह कर कि कोई बेवड़ा होगा

न जाने क्यूं निकल पड़ते हैं तेरे घर की जानिब हम
हमे मालूम होता है वहां ताला जड़ा होगा

ये पगला चीख पड़ता है ज़रा सी ठेस लगते ही
न जाने कब हमारे दिल का ये बच्चा बड़ा होगा

7

हुक्मरानो के सितम का दायरा बढ़ जाएगा
चुप रहे गर हम तो उनका हौसला बढ़ जाएगा

अब तलक सर पर तुम्हारे हाथ है उनका मगर
तुम अगर झुकते गए तो फ़ासला बढ़ जाएगा

मेरी सच्चाई से सब को खौफ़ है बस इसलिए
पत्थरों के शहर में इक आईना बढ़ जाएगा

ये चुनावी दौर है हर सिम्त फैलेगा तनाव
मुल्क में अब हादसों का सिलसिला बढ़ जाएगा

सोचने में वक्त मत ज़ाया करो हरमन मियां
तुम अगर ठहरे रहे तो दूसरा बढ़ जाएगा

6

कई खुल कर फिरौती ले रहे हैं
कई बस चाय पानी ले रहे हैं

करेगा क्यूं कोई फ़ोकस किसी पर
सब अपनी अपनी सेल्फ़ी ले रहे हैं

तुम्हें मालाएं पहनाई जिन्होंने
सुनो! वो लोग फांसी ले रहे हैं

गुलाबों की दुकानों से चले थे
ये जो तरकारी भाजी ले रहे हैं

थी जितनी जान सारी दे चुके हम
हैं जितनी सांस बाक़ी, ले रहे हैं

8

क्या? हवाओं में घर बने हुए हैं
फूंक डालो अगर बने हुए हैं

ये मौहब्बत का मोजज़ा ही तो है
मिट गए हम, मगर बने हुए हैं

आजकल सब दिये अंधेरे के
ब्रांड एम्बेसडर बने हुए हैं

अपने मक्का मदीना चारों धाम
सब रूखे यार पर बने हुए हैं

कैसे कैसों से बेख़बर हैं हम
ऐसे वैसे ख़बर बने हुए हैं

9

दिया बेख़ौफ़ जलता जा रहा है
हवाओं को पसीना आ रहा है

यहां नफ़रत के कीचड़ में हमेशा
मौहब्बत का कमल खिलता रहा है

ख़बर दे दी गयी है मछलियों को
नदी में जाल फेंका जा रहा है

मैं उस में डूब जाना चाहता हूँ
वो मुझको तैरना सिखला रहा है

दिले हरमन फ़ना होने से पहले
तेरी पाज़ेब में अटका रहा है।

•

प्रेरक प्रसंग

बाबा भकना एक मित्र के साथ अमरीका में नौकरी की तलाश में निकले थे। एक फैक्टरी के मैनेजर से मिले। पूछा, 'आपके यहां कोई जगह खाली है, नौकरी के लिए?' उत्तर मिला, 'हां, है, पर तुम्हारे लिए नहीं।'

भकना ने कहा, 'क्यों नहीं? हमारा कसूर?'

'कसूर, एक बात बताओ, तुम्हारे देश की आबादी क्या है?'

'तीस करोड़।'

'और वहां कितने अंग्रेज हैं?'

'होंगे कुछ लाख।'

'और तुम कुछ लाख के गुलाम हो? तीस करोड़ आदमी हैं या भेड़ें।'

फिर मैनेजर बोला, 'जी तो चाहता है, तुम्हें गोली मार दूं, पर एक बात है। नौकरी तो नहीं, मैं तुम्हें बंदूकें दे सकता हूं। जाओ, देश की आजादी के लिए लड़ो। आजाद होकर मेरे पास आना। मैं खुशी से तुम्हें नौकरी दूंगा।'

(नौकरी तो क्या, गोरे भोजनालय में उन्हें भोजन तक न मिलता था।) *साभार-आजादी या मौत, वेद प्रकाश 'वटुक' नवम्बर 2015*

विनोद सिल्ला

तरक्की का दौर

तरक्की के दौर में
गुम हो गया
भाईचारा
टूट गई
स्नेह की तार
व्यक्ति का नाम
छिप गया
सरनेम की आड़ में
पड़ोसी हो गए
प्रतिद्वंद्वी
रिश्तेदार भी हो गए
मौकापरस्त
स्वार्थ की भावना
हो गई बलवती
इस तरक्की के दौर में
जाने क्या-क्या
होना बाकी है

जड़ों में मट्ठा

मंच से
उनका भाषण था
समाज को ऊर्जा देने वाला
समाज सेवा में
उनका नाम था अव्वल
हर तरफ
उनके नाम की
बोलती थी तूती
हर तरफ थी
जय-जयकार
परन्तु पर्दे में
उनकी करतूतें
डाल रही थी मट्ठा
समाज की जड़ों में
कर रही थी कमजोर
समाज को
वो अच्छे वक्ता
हो सकते हैं
परन्तु
अच्छे समाज सेवक नहीं

दायरे

कर लिए कायम
दायरे
सबने अपने-अपने
हो गए आदि
तंग दायरों के
कितना सीमित कर लिया
खुद को सबने
नहीं देखा कभी
दायरों को तोड़ कर
अगर देख लेता
तोड़ कर इनको
तो हो जाता उन्मुक्त
पक्षियों की तरह
जिन्हें नहीं रोक पाते
छोटे-बड़े दायरे
नहीं कर पाती सीमित
इनकी उड़ान को
देशों-प्रदेशों की
या अन्य प्रकार की सीमाएं

लजीज खाना

मैं जब
कई दिनों बाद
गया गाँव
माँ ने
अपने हाथों से
बनाई रोटी
कद्दू की बनाई
मसाले रहित सब्जी
रोटी पर रखा मक्खन
लस्सी का
भर दिया गिलास
खाने में जो
मजा आया
इसके सामने मुझे लगा
किसी रैस्टोरैंट का
शाही पनीर
कुछ भी नहीं

सम्पर्क-. 09728398500

महेन्द्र सिंह

लाचार एकलव्य

अर्जुन ही बने
धनुर्धारी सबसे बड़ा
क्योंकि
राजपुत्र था वह
एकलव्य आ गया बीच में
मांग लिया गुरु द्रोण ने
अँगूठा ...... वो
तीर चलाता था जो।

लेकर
हुनर मन्द के हुनर की बली
बन गए द्रोणाचार्य
विश्व के महानतम आचार्य

हे एकलव्य !
काश ! हो जाते तुम विद्रोही
तो न होता
लाचार इतना

..... आज का एकलव्य

सम्पर्क-9466818345

राज कुमार जैन राजन

एक सवाल

एक सवाल
बार कौंधता है
मन मेरे
कि यह दुनियां ऐसी क्यों है?

गांव की चौपाल से लेकर
संसद के गलियारों तक
मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर
और धर्म सभाओं तक
बड़ी सावधानी से
बांटा जाता है एक ही जहर।

बहाए जाते हैं घड़ियाली आंसू
देश की चिंतनधार कुंठित हो रही है
भाषणों की वृष्टि से
चलाया जा रहा है एक अभियान
नई-नई शतरंजी चालों में
आम-आदमी को उलझा दिया जाता है
'कर्मण्येवाधिकारस्ते' का
महामंत्र उसके गले के नीचे
बड़ी सावधानी से उतार दिया जाता है

अपनी बाजी हारकर
आदमी छटपटाता है

और बार-बार पूछता रहूंगा
वही एक पुराना सवाल
कि यह दुनियां ऐसी क्यों है?

सम्पर्क-098282-19919

ज़ज़्बे की पाठशाला

□ नरेश कुमार

शिक्षा व्यक्ति व समाज के विकास का माध्यम है। अपने बच्चों को सर्वश्रेष्ठ स्कूल में प्रवेश और कक्षा में सर्वोच्च स्थान पर लाने की होड़ इस दौर की सबसे बड़ी प्रतियोगिताओं में से एक है। अभिभावकों की उम्मीदें बच्चों के स्वाभाविक विकास को कुचल रही हैं। इस दौर में अभिभावकों की अपने बच्चों को बड़े आर्थिक पैकेज और शोहरत वाले कैरियर को पा लेने की महत्वकाक्षाएं हैं। दूसरी ओर अपनी रोजी-रोटी जुटाने की तलाश में निकले लाखों प्रवासी मजदूरों के बच्चे अभी स्कूलों से बाहर हैं। इन बच्चों को स्कूल तक पहुंचाने में कुछ हद तक सामाजिक स्तर पर रचनात्मक तरीकों से कार्य किया जा सकता है। प्रस्तुत है पिछले 12 साल से रोहतक में रात को पाठशाला चला रहे नरेश कुमार के अनुभव - सं.

रोहतक के सेक्टर 4 की हाऊसिंग बोर्ड कालोनी में प्रवासी श्रमिकों के बच्चों के बीच पिछले 12 वर्षों से अनौपचारिक शिक्षा का एक प्रयास चल रहा है। एक पार्क में स्ट्रीट लाइट के नीचे चल रहे इस गांधी स्कूल में करीब 80 बच्चे नियमित रूप से पढ़ने आते हैं। जाने-माने इतिहासकार प्रोफेसर सूरजभान इस प्रयास की नींव रखने के प्रमुख प्रेरणा के स्रोत रहे। प्रवासी मजदूरों की रिहायशी बस्ती में 5 सितम्बर 2005 को हुई इस शुरूआत के पहले दिन 3 बच्चे एक चौराहे पर पढ़ने आए। इन बच्चों के साथ खेलने, पढ़ने और कविता-कहानी के बारे में बातचीत की गई। अगले दिन 5 बच्चे पढ़ने आए। इससे हौंसला लेते हुए कई प्रवासी मजदूरों के घर जाकर बच्चों को पढ़ने के लिए भेजने का अनुरोध किया। महीने भर में चौराहे पर पढ़ने आने वाले बच्चों की संख्या 16 हो गई। साथ ही नियमित अंतराल में बच्चों के अभिभावकों के साथ संवाद शुरू हो गया और धीरे-धीरे गांधी स्कूल में उनका विश्वास बढ़ता गया। बच्चों से हाथ मिलाने, प्यार से उनके सीखने के सामर्थ्य को प्रोत्साहित करने, गोदी उठाने, आते ही सबको गुड इवनिंग बोलने, लेट होने पर बच्चों से माफी मांगने और किसी भी प्रकार के उठने वाले सवालों और जिज्ञासाओं को बेबाकी से अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित किए जाने से बच्चों में गांधी स्कूल के साथ गहरा लगाव बढ़ता गया। इन बीते वर्षों में अलग-अलग समय में 1174 प्रवासी बच्चे गांधी स्कूल में पढ़ने आए।

धीरे-धीरे इन बच्चों को पास के सरकारी स्कूल में दाखिल कराना शुरू किया। अब अधिकतर बच्चे दिन में सरकारी स्कूलों में जाते हैं और शाम को 6 बजे स्ट्रीट लाईट जलते ही गांधी स्कूल

(पार्क) में पहुंच जाते हैं। कई प्रवासी बच्चे तो दो कि.मी. पैदल चलकर गांधी स्कूल पहुंचते हैं।

'पढ़ेंगे पढ़ाएंगे,जीवन सफल बनाएंगे' के नारे के साथ गांधी स्कूल की शुरूआत होती है। स्कूल पहुंचते ही दिनभर की आस-पास की घटनाओं को बच्चे बड़े चाव के साथ बताते हैं। उत्तरप्रदेश और बिहार की पृष्ठभूमि से आने वाले इन बच्चों की शुरूआत में स्थानीय बोली के चलते कुछ भाषायी दिक्कतें आई, लेकिन शीघ्र ही एक-दूसरे से सीखते हुए स्वाभाविक लगाव बनता चला गया।

प्रवासी बच्चों को स्कूलों में आने वाली समस्याएं: प्रवासी मजदूरों में अपने बच्चों को शिक्षित बनाने की प्रबल इच्छा है। अनेक प्रवासी मजदूरों के बच्चों को सार्वजनिक शिक्षा के तहत सरकारी स्कूलों में दाखिला लेने के लिए जाति-प्रमाण पत्र, आधार-पहचान पत्र, जन्म-प्रमाण पत्र व बैंक खाता खुलवाने से जुड़ी कई शर्तों के चलते भारी कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। आस-पास सरकारी स्कूल न होने की वजह से कई बच्चों को पढ़ाई से वंचित ही रहना पड़ता है। खुले आसमान के नीचे झोपड़ी डालकर रह रहे अनेक कूड़ा बीनने वाले प्रवासी मजदूर परिवारों के बच्चों के धार्मिक अल्पसंख्यक पृष्ठभूमि से आते हैं। स्कूलों में दाखिल होने के रास्तों में इनके बच्चों को और भी ज्यादा समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रवासी और अल्पसंख्यकों के इन बच्चों के प्रति कुछ शिक्षकों के पूर्वाग्रह भी उनके स्कूल पहुंचने के आकर्षण को मंद कर देते हैं। इन बच्चों के साथ कुछ शिक्षकों द्वारा हतोत्साहित करने वाली भाषा प्रयोग किए जाने के मामले भी सामने आते हैं।

शहरों में सरकारी स्कूलों की कमी के चलते प्रवासी मजदूरों के बच्चों को स्कूल जाने के लिए कई-कई कि.मी. तक पैदल चलना पड़ता है। प्रवासी मजदूरों के कार्यस्थल बदल जाने के कारण कई बच्चों को बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ती है।

गांधी स्कूल के प्रयास के प्रति जनमानस का दृष्टिकोण: प्रवासी बच्चों को इस तरह से स्ट्रीट लाइट के नीचे नियमित पढ़ने के कार्य के प्रति सामाजिक स्तर पर व्यापक हमदर्दी है। काम को भलाई के रूप में देखने वाले बड़ी संख्या में नागरिक मौजूद हैं। विशेषकर डाक्टरों, शिक्षकों, छात्रों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, कारोबारियों और सामाजिक संगठनों सहित हर क्षेत्र में हाशिए के इन वंचितों बच्चों को शिक्षित करने के कार्य को समर्पित और नेक उद्देश्य के रूप में देखते हैं। समुदायों के बीच से ही बड़ी संख्या में ऐसे नागरिक आगे आते हैं, जो इन बच्चों के लिए कापी, किताबें, सर्दी के कपड़े, साईकिल, दरी कुर्सी जैसे जरूरत के सामान को बड़े उत्साह के साथ मुहैया कराते हैं। मेडिकल व कालेज-विश्वविद्यालयों के कई छात्र-छात्राएं अपना कुछ समय निकालकर बच्चों को बीच-बीच में पढ़ाने पहुंच जाते हैं। कई मध्यमवर्गीय नौकरी पेशा और कारोबारी परिवार अपने बच्चों का जन्मदिन गांधी स्कूल के बच्चों के साथ कापी-पैंसिल बांटकर मनाते हैं। मीडिया में भी इस प्रयास का संज्ञान लिया है। स्कूल के आस-पास की आबादी में प्रवासी मजदूरों के बच्चों के प्रति बने पूर्वाग्रहों की तीव्रता में भी कुछ कमी देखी जा सकती है।

समय-समय पर महापुरूषों की याद में बच्चों द्वारा सांस्कृतिक आयोजन किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों में स्कूल के प्रति हमदर्दी रखने वाले नागरिकों और बच्चों के अभिभावकों को भी शामिल किया जाता है।

सामाजिक सरोकारों से जुड़े अनेकों मुद्दों पर बच्चों की भागीदारी रहती है। लैंगिक समानता, सद्भावना, सामाजिक न्याय और बराबरी की अवधारणा के प्रति बच्चों में आकर्षण पैदा हो रहा है। पर्दा फैंको, दुनिया देखो, गुटका छोड़ो, शराब छोड़ो, लड़का-लड़की एक समान, हम सब एक हैं, पढ़ेंगे पढ़ाएंगे-जीवन सफल बनाएंगे जैसे विषयों पर बच्चे हर महीने पोस्टर बनाकर आस-पास की बस्तियों में रैली निकालते हैं। अपने बच्चों में आत्मविश्वास और उनकी सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुतियां देखकर अभिभावकों में अपने बच्चों के बेहतर भविष्य की अपेक्षाएं साफ तौर पर देखी जा सकती हैं।

'ईद भी अपनी, तीज भी अपनी' का पैगाम लेकर त्योहारों के मौके पर अपने मास्टरों के साथ बच्चे एक-दूसरे के घर मुबारकबाद-बधाई देने जाते हैं। इन मौकों पर बच्चों और उनके अभिभावकों द्वारा किया जाने वाला आदर-सत्कार व अपनेपन का रिश्ता रोमांचित कर देता है।

सीखने-सीखाने संबंधी कुछ अनुभव: बच्चों की बात सुनना, उनसे सीखना और सजा की बजाए संवाद का संबंध कायम करना, समस्या को समझना और उसके निदान के लिए बच्चों को शामिल करते हुए सामूहिक दृष्टि अपनाए जाने के सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं। प्यार से बच्चों के साथ घुलने-मिलने, उनके बीच बैठकर पढ़ने-पढ़ाने, उनके साथ खेलने और बच्चों को गोदी उठाने जैसे तौर-तरीके ऐसे प्रयासों को आधार प्रदान करते हैं।

स्कूल की शुरूआत बच्चों के साथ दिन की महत्वपूर्ण घटना या उनके जीवन की दिनचर्या से जोड़कर बातचीत शुरू की जाती है, सीखने की प्रक्रिया को रूचिकर बनाने के प्रयास करते हुए विषय

गांधी स्कूल कई मायने में विशिष्ट है। यह मानवता के काम में निस्वार्थ सेवा है। यह सिर्फ उन बच्चों की सहायता और उत्साहवर्धन नहीं है, जिनके पास पर्याप्त आर्थिक संसाधन नहीं हैं और न ही सामाजिक पृष्ठभूमि है। सच्चाई ये है कि ये बच्चे विशेष आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग से संबंधित हैं। एक और सच्चाई ये है कि हर रोज 3 घंटे के इस संवाद में इन छोटे-छोटे बच्चों की भावनाएं उजागर हो जाती हैं। इनका जो आत्मविश्वास है, वो रेखांकित करने योग्य है। मेरे पास श्री नरेश की निष्ठा की तारीफ में कहने के लिए कोई शब्द नहीं हैं। ये स्कूल बेशक छोटा है, लेकिन यह दूसरों को उत्साह प्रदान करने का प्रतीक है।

-डा. रवि मोहन

को कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पढ़ने के बाद खेलने का आग्रह शुरू कर देते हैं। बच्चों में खेलकूद, गीत, नाटक, नृत्य और पेंटिग जैसी गतिविधियों में हिस्सेदारी करने की होड़ लग जाती है।

लड़कियों की शिक्षा को लेकर बच्चों ने स्वयं 'सोच नई, राह नई' नाटक की स्क्रिप्ट तैयार करके कई जगह सुंदर प्रस्तुति दी। अपनी मजदूर बस्ती में बच्चों ने विश्वकर्मा दिवस पर हजारों श्रमिकों के बीच आयोजकों से आग्रह करके अपने तैयार किए नाटक की बेहतरीन प्रस्तुति दी। लैंगिक संवेदनशीलता, बराबरी, न्याय और अपने जीवन के संघर्षों के बारे में बच्चों द्वारा गाए जाने वाले गीतों और नृत्य से यह आभास होता है कि एक सचेत, उदार और लोकतांत्रिक समाज के कई पक्षों को बच्चे अपने जीवन में पहचानने की कोशिश कर रहे हैं।

बच्चों के अभिभावकों के साथ नियमित संवाद करते हुए उनकी समस्याओं और जरूरतों के साथ जुड़ने से आपसी विश्वास बढ़ता है। बच्चों और अभिभावकों के लिए दांतों व आखों की बीमारियों के निदान के लिए मेडिकल कालेज की मदद से कैम्प भी आयोजित किए जाते हैं।

प्रवासी मजदूरों की यह पहली पीढ़ी है, जो अनेक कारणों के चलते प्राथमिक शिक्षा से आगे नहीं बढ़ पाती थी, अब कालेज तक पहुंच रही है, यह पक्ष हमें उत्साह से भर देता है। ऐसे कई बच्चे हैं जो गांधी स्कूल से प्रेरणा पाकर आज स्कूलों में नियमित जा रहे हैं और शाम होते ही चहचहाते हुए अपने गांधी स्कूल पंहुच जाते हैं। इसमें वो छात्राएं भी शामिल हैं,जो अब तक बाल विवाह की कैद में जा चुकी होती, अब वे नाटक व गीतों के माध्यम से न्याय, बराबरी, पढ़ने व बढ़ने के सपने गढ़ रही हैं। पंद्रह साल पहले अधिकतर बच्चे बाल-मजदूरी की बेड़ियों की चपेट में आ जाते थे जबकि मौजूदा समय में बहुमत बच्चे स्कूलों में पढ़ रहे हैं। बच्चों का कहना है कि हमें गांधी स्कूल की रोशनी नही मिल पाती तो हम बाल श्रम और बाल विवाह की दलदल में जी रहे होते। आठवीं कक्षा के लिए आयोजित होने वाली एन.एम.एस.एस. परीक्षा में गांधी स्कूल के दो बच्चों ने 500 रू. महीना वजीफा पाने में कामयाब हासिल की।

गांधी स्कूल के प्रति बढ़ती सामाजिक स्वीकार्यता से अनेक युवाओं, शिक्षाविदों, भलाई में यकीन रखने वाले परिवार, पेशेवर व कारोबारियों का गांधी स्कूल के प्रति अपनेपन का भाव है और अपने परिवार के सदस्यों को ऐसे प्रयासों के साथ जुड़ने की सीख देते हैं।

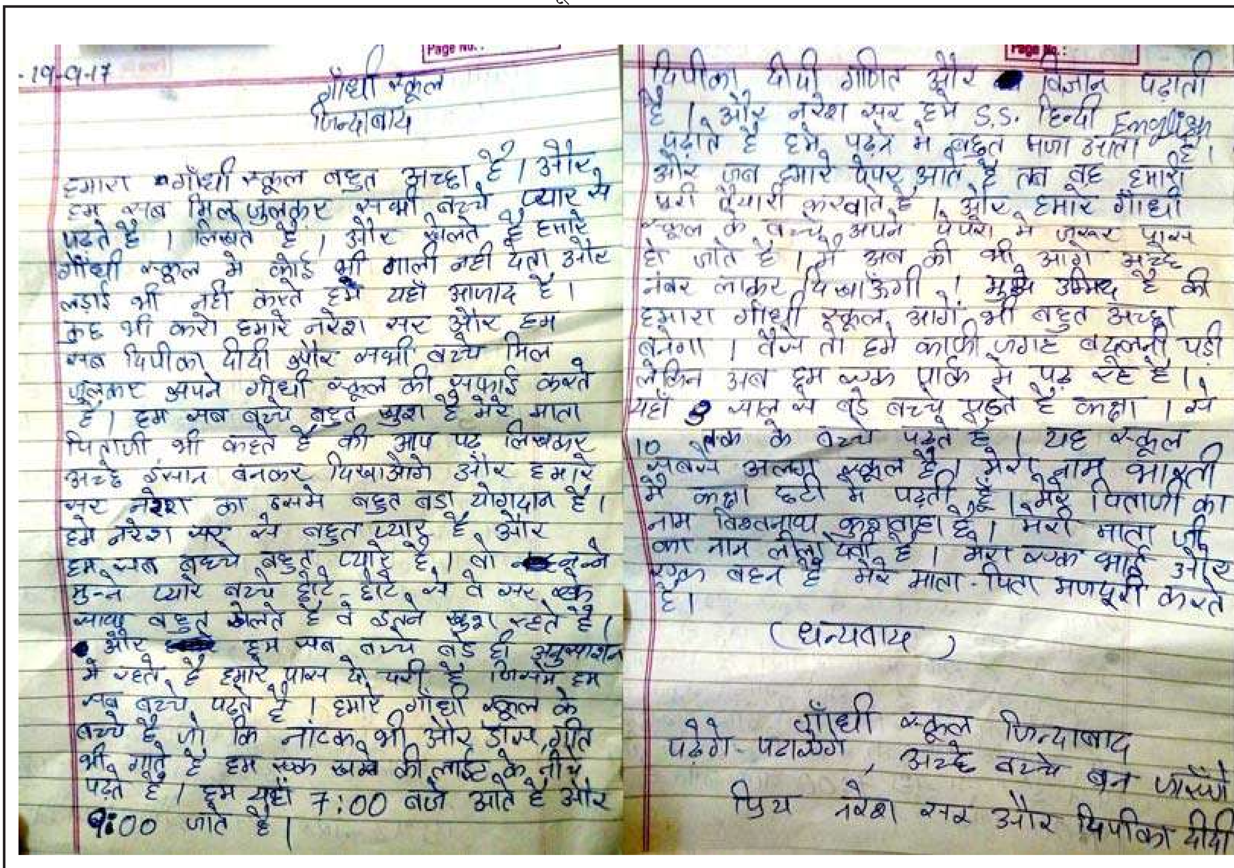
19-9-17

गाँधी स्कूल
जिन्दाबाद

हमारा गाँधी स्कूल बहुत अच्छा है। और हम सब मिलजुलकर सभी बच्चों प्यार से पढ़ते है। लिखते है। और खेलते है हमारे गाँधी स्कूल मे कोई भी गाली नही देता और लड़ाई भी नही करते हमे यहा आजाद है। कुछ भी करो हमारे नरेश सर और हम सब दिपीका दीदी और सभी बच्चे मिल जुलकर अपने गाँधी स्कूल की सफाई करते है। हम सब बच्चे बहुत खुश है मेरे माता पिताजी भी कहते है की आप पढ लिखकर अच्छे इंसान बनकर दिखाओगे और हमारे सर नरेश का इसमे बहुत बड़ा योगदान है। हमे नरेश सर से बहुत प्यार है और हम सब बच्चे बहुत प्यारे है। वो … मुन्ने प्यारे बच्चे छोटे-छोटे से वे सर एक साथ बहुत खेलते है वे इतने खुश रहते है। और … हम सब बच्चे बड़े ही अनुशासन मे रहते है हमारे पास के परी है जिसमे हम सब बच्चे पढ़ते है। हमारे गाँधी स्कूल के बच्चे है जो कि नाटक भी और डान्स, गीत भी गाते है हम स्ट्रीट लाईट के नीचे पढ़ते है। हम यहाँ 7:00 बजे आते है और 9:00 जाते है।

दिपीका दीदी गणित और विज्ञान पढ़ाती है। और नरेश सर हमे S.S. हिन्दी English पढ़ाते है हमे पढ़ने मे बहुत मजा आता है। और जब हमारे पेपर आते है तब वह हमारी परी तैयारी करवाते है। और हमारे गाँधी स्कूल के बच्चे अपने पेपरो मे जरूर पास हो जाते है। मै अब की भी आगे अच्छे नंबर लाकर दिखाऊँगी। मुझे उम्मीद है की हमारा गाँधी स्कूल आगे भी बहुत अच्छा बनेगा। वैसे तो हमे काफी जगह बदलनी पड़ी लेकिन अब हम एक पार्क मे पढ़ रहे है। यहाँ 3 साल से बड़े बच्चे पढ़ते है कक्षा 1 से 10 तक के बच्चे पढ़ते है। यह स्कूल सबसे अलग स्कूल है। मेरा नाम भारती मै कक्षा छटी मे पढ़ती हूँ। मेरे पिताजी का नाम विश्वनाथ कुशवाहा है। मेरी माता जी का नाम लीलावती है। मेरा एक भाई और एक बहन है मेरे माता-पिता मजदूरी करते है।

(धन्यवाद)

गाँधी स्कूल जिन्दाबाद
पढ़ेंगे-पढ़ाएंगे, अच्छे बच्चे बन जाएंगे
प्रिय नरेश सर और दिपीका दीदी

शहरों में विशेषकर बाहरी इलाकों में बड़ी संख्या में प्रवासी, कूड़ा बीनने वाले, घूमंतू , घरों में काम करने वाली महिलाएं और अनेक तरह की फुटकर दिहाड़ी करने वाले मजदूरों के स्कूल जाने की आयु वर्ग के बड़ी संख्या में बच्चे स्कूलों से बाहर हैं। युवाओं को जोड़ते हुए अपने शहर या कस्बे में अनौपचारिक शिक्षा के इसप्रकार के कार्य शुरू किए जाने की जरूरत है। ●

सम्पर्क-94162-67986

मां

□ कामरेड पृथ्वी सिंह गोरखपुरिया

(30 जून 2007)

पृथ्वीसिंह गोरखपुरिया सच्चे किसान-मजदूर हितैषी । 1944 में फतेहाबाद जिले में जन्मे। नहला गांव से दसवीं पास करके डी एन कालेज हिसार से स्नातक पास की। हरियाणा छात्र संघ का गठन किया। 1968 में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के छात्र संघ के अध्यक्ष चुने गए। 1971 में विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया और पी एच डी की पढाई बीच में ही छूट गई। संघर्षों के कारण 1972 -73 में जेल गए। आपात काल घोषित होते ही गिरफ्तार किए गए। बड़ोपल और भट्टू से विधान सभा के लिए चुनाव भी लड़ा पर जीत नहीं मिली।

मैक्सिम गोर्की की मां ना सही पर मेरे लिए वह गोर्की की मां से कम नहीं। वह मुझे पढ़ा-लिखाकर 'मंत्री' बड़ा अफसर बनाना चाहती थी। मुझे यह मंजूर नहीं था। मैं समाज को बदलना चाहता था। गरीबी व अभाव की पीड़ा मैंने भोगी थी। जात-पात, अन्ध विश्वास, रूढ़ियों, धर्मान्धता के मैं बचपन से ही खिलाफ हो चला था। मैं सातवीं कक्षा में हरिजनों के घर पानी पीने चला गया था। इसलिए मैंने दूसरा रास्ता चुना। हांलाकि घर की हालत बहुत अच्छी नहीं थी। मेरी छोटी बेटी तो अब भी कई बार कह चुकी है कि 'आपने बैंक की नौकरी क्यों नहीं की। कोई बड़े अफसर क्यों नहीं बने।' बड़ा बेटा पढ़ाई में बहुत होशियार। पंजाबी में व जिला में ऊंची मैरिट लेकर उतीर्ण हुआ। उसको वजीफा मिलने लगा था। परन्तु वह दसवीं में मेरे पास से इसलिए चला गया कि 'पिताजी की राजनीति के चलते तो उनके भूखे मरने की नौबत आ जायेगी' वह तीन साल तक मेरे पास नहीं आया और अपने छोटे चाचा के साथ मिलकर कमाने लायक धंधा शुरू कर लिया।

परन्तु मेरी मां सारी उम्र मेरी सहयोगी बल्कि यो कहिए संघर्ष की साथी रही। पहले मेरी पढ़ाई जारी रखने के लिए और फिर मार्क्सवादी पार्टी की राजनीति (मजदूरों किसानों की राजनीति को आगे बढ़ाने के लिए) ताउम्र मेरा साथ देती रही। उसने अपने जेवरात, गांव के 2 प्लॉट तथा उसके नाम की 20 एकड़ जमीन मुझे बेचने के लिए दे दी। मैं कालेज में आया तो उसने मुझे एक बात कही थी 'अच्छा करेगा तो अपने लिए, बुरा करेगा तो अपने लिए। हमने तो जिंदगी यों ही बितानी है।' गांव के लोगों ने मेरे बारे में तरह-तरह की बातें शुरू की। मेरी मां को बहकाना शुरू किया। छोरे नै इतना मत पढ़ावै पागल हो जैगा। जब मेरी पी.एच.डी. के लिए रजिस्ट्रेशन हो गया तो वही लोग कहने लगे कि अगर उसने पेचड़ी ही लगानी थी तो इतना पढ़ने की क्या जरूरत थी। परन्तु मेरी मां अपने इरादे से नहीं डिगी। मैं गांव में और यूं कहिए कि बहुत से गांवों में पहला व्यक्ति था जिसने डबल एम.ए. की थी और पी.एच.डी. करने लगा था। शायद यह बात चौधरियों को अखरती थी।

मेरी मां अनपढ़ थी। परन्तु समझदार थी। घर में सत्संग आदि करती रहती। बहुत सी औरतें उनके साथ आती थी। उस समय नशा करने वालों को पुलिस पकड़ने आती। मेरे गांव में अफीम, भुक्की और दारू का बहुत चलन है। सैंकड़ों औरतें व बच्चे भी नशे की लत में पड़े हुए हैं। पुरूषों (आदमियों/ माणसों) का तो कहना ही क्या।

उस दौर में बिजली, नहरी पानी आदि की व्यवस्था न के बराबर थी। हरियाणा में अकाल पड़ते रहते थे। शहरों का विकास बहुत ही कम हुआ था। पश्चिम व पश्चिम-उत्तर से आने वाले लोग दिल्ली जीतने के लिए हरियाणा से होकर जाते थे। इसलिए हरियाणा राज्य में शांति व स्थायित्व नहीं रह पाया। फलस्वरूप खेती का विकास अवरूद्ध रहा और पशुचारण लोगों का मुख्य धंधा रहा। लोगों के पास काम के बाद काफी समय बच जाता था। पढ़ाई-लिखाई कुछ ही परिवारों तक सीमित थी। इसलिए लोग नशे की लत का शिकार हो जाते थे।

हरियाणा में एक कहावत प्रचलित है- ठाली नाण काटड़े मुंडै...नौजवान व अन्य बहुत से लोग डेरों व मठों में दिन काटते थे। मेरे पिताजी इन्हीं डेरों व मठों के जंजाल में फंस गये। हांलाकि वे बहुत अच्छे बांसुरी वादक व पहलवान थे, परन्तु उनके दिमाग में सुल्फा व गांजा चढ़ गया। घर बार की फिक्र छोड़, डेरों का चक्कर लगाने लगे और इस प्रकार घर को चलाने व बच्चों को पालने का सारा काम मां के सिर आप पड़ा। वो मेरे को कहती रहती थी कि अगर इस पार्टी को पकड़ लिया तो इसको छोड़ना मत। वो जनवादी महिला समिति व पार्टी के जलसों, मीटिंगों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती थी। वो कई बार पार्टी जलसों में भाग लेने दिल्ली गई। उसने बाबरी मस्जिद गिराने के उपरांत जनवादी महिला समिति की लखनऊ रैली में भाग लिया, जनवादी महिला समिति की भिवानी रैली में पंहुची। गुजरात, अहमदाबाद की महिला समिति में भाग लिया। पार्टी की चुनावी रैलियों में लगातार भाग लेती रही। कर्मचारी आंदोलन के दौरान कर्मचारियों के समर्थन में गिरफ्तारी दी और 15 दिन चंडीगढ़ बुड़ैल जेल में रही। वह मेरे लिए हमशा प्रेरणास्रोत रही।

वह हरियाणवी में महिलाओं में सवाल पर, किसानों की समस्याओं को लेकर गीत बनाती रही। जीवन से जुड़ी बहुत कहावतें हमें सुनाती थी, जो बहुत शिक्षाप्रद होती थी। जैसे 'अकल सै तेरी छोटी, बात कहै ओरां की खोटी', वह मुझे बचपन में बताती थी की गदर (1947) के समय अपने घर में करीब 40 मुस्लिम औरतों व मर्दों को रखा और वह उनको रोटी बना बनाकर खिलाती थी। एक मुसलमान हमारा पारिवारिक दोस्त था। 1947 के दंगों के समय उसके मन में डर बैठ गया। उसने जाने की ठान ली। मेरा ताऊ ऊंट पर उसके 2 बच्चों व पत्नी समेत बिठाकर अग्रोहा से आगे छोड़ कर आया। पहले हमारे घर के लोगों ने उसको न जाने के लिए बहुत मनाया। परन्तु वह नहीं माना। रास्ते में उसके बच्चे मार दिये और औरत को दंगाई ले गये। वह रोता-पीटता पागल होकर खेत में पहुंचा। मेरे ताऊ ने उसको बहुत गाली दी, 'साले माना नहीं। मेरे फूल से बेटों को मरवाकर मेरे पास आया।' परन्तु फिर क्या हो सकता था। उन्मादी भीड़ों की वीभत्स करतूतों की चर्चा शुरू होते ही दिल दहल जाता है और रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ●

समाज अपने समय की सच्चाई को अपने रचनाकारों की आंख से देखता है। यह जानना हमेशा ही रोचक होता है कि रचनाकार अपने समय को कैसे देखते व अभिव्यक्त करते हैं। हरियाणा में साहित्य विमर्श की संस्कृति का घोर अभाव है, जिसका यहां के साहित्यिक परिवेश पर खासा नकारात्मक असर है। लेखकों व साहित्यकारों के बीच यह निरंतर चिंता का विषय है। हरियाणा की रचनाशीलता की पहचान के लिए 'देस हरियाणा' के हर अंक में किसी एक रचनाकार पर विशेष सामग्री प्रस्तुत की जाएगी। आशा है कि इससे हरियाणा में साहित्य-विमर्श की संस्कृति पनपेगी व साहित्य बोध विकसित होगा।

*इस बार हम हरियाणा के कहानीकार तारा पांचाल की रचनाओं पर केंद्रित कर रहे हैं। हम तारा पांचाल की रचनाएं निरंतर प्रकाशित करते रहे हैं। इसमें उनकी रचना प्रक्रिया व रचना सरोकारों पर प्रकाश डालता उनका वक्तव्य तथा उनकी रचनाओं की मूल्यवत्ता को उदघाटित करते आलेख प्रस्तुत कर रहे हैं। -**सं.***

खास रचनाकार

तारा पांचाल
28 मई,1950 - 20 जून, 2009

साहित्य की यथार्थवादी परंपरा के कहानीकार तारा पांचाल का जन्म 28 मई, 1950 को नरवाना, जिला जींद में हुआ। पंजाब विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। प्रारंभिक जीवन से जीवन से ही लेखन के प्रति रूझान रहा। किशोरावस्था में ही अखबारों में उनकी लघुकथाएं व कहानियां प्रकाशित होने लगी थी। 'सारिका', 'हंस', 'कथन', 'वर्तमान साहित्य', 'पल-प्रतिपल', 'बया', 'गंगा', 'अथ', 'सशर्त', 'जतन', 'अध्यापक समाज', 'हरकारा' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में पाठक उनकी कहानियों से निरन्तर परिचित होते रहे हैं। 'गिरा हुआ वोट' संग्रह की दस कहानियों समेत तारा पांचाल की कुल चालीस के आसपास कहानियां हैं, जिनमें कुछ अप्रकाशित हैं।

अपनी युवावस्था में हरियाणा के कहानीकारों की कहानियों का संग्रह 'बणछटी' का संपादन-प्रकाशन किया, जिसकी उस समय काफी सराहना हुई थी। तारा पांचाल लगातार अपने साथी रचनाकारों तथा नव-रचनाकारों को प्रोत्साहित करते रहे हैं। बेहद विपरीत परिस्थितियों में उन्होंने 'जतन' पत्रिका के संपादन की मुख्य जिम्मेवारी निभाई। उनका छोटा सा घर साहित्यिक-गोष्ठियों और विमर्श का अड्डा था। तारा पांचाल कई वर्षों तक हरियाणा के जनवादी लेखक संघ के अध्यक्ष रहे। जोड़-तोड़ करके पुरस्कार हथियाना तथा स्वयं को सर्वश्रेष्ठ रचनाकार की घोषणा के लिए हिन्दी के कथित आलोचकों व पत्रिकाओं के संपादकों के आगे-पीछे फिरना उनकी फितरत का हिस्सा नहीं था। हरियाणा की साहित्य अकादमी ने भी वर्ष 2007-08 का बाबू बालमुकुन्द गुप्त सम्मान प्रदान करके तारा पांचाल की रचनात्मक प्रतिभा का सम्मान किया।

आत्मकथ्य

हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा बाबू बालमुकुन्द गुप्त पुरस्कार 2007-08 के अवसर पर दिया गया वक्तव्य

मां की ना कहिए, न्या की कहिए

□ तारा पांचाल

मेरी कहानियों के मूल्यांकन के आधार पर मुझे बाबू बालमुकुंद गुप्त पुरस्कार दिए जाने के लिए मैं हरियाणा साहित्य अकादमी का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं। इस अवसर पर मैं अपनी लेखकीय चिंताओं में से एकाध यहां उपसिति आप सभी लेखकों बुद्धिजीवियों सें इस विश्वास के साथ सांझा करना चाहता हूं कि इसी तरह की चिंताएं आपकी सोच का भी हिस्सा रही हैं। साथियो! लेखक के रूप में मेरी और राज्य के रूप में हरियाणा की आयु लगभग बराबर है। संभवत: यही कारण है इस माटी से मेरा अतिरिक्त लगाव रहा है। मोह रहा है, लेकिन हरियाणा में कहावत है कि 'मां की ना कहिए।' यानि हमारी लोक संस्कृति में भी चीजों को वस्तुपरकता की कसौटी पर कसने की हिदायत है न कि अनुराग या मोह के वशीभूत होकर।

हरियाणा की आर्थिक प्रगति हमारे सामने है, जिस पर किसी को भी संतुष्टि हो सकती है, लेकिन आर्थिक प्रगति के चलते स्वस्थ सांस्कृतिक मूल्यों की अनदेखी होती चली जाए, यह भी परखना-देखना आवश्यक है।

हरियाणा में सबसे बड़ा संकट तर्क पर रहा है, जो शिक्षा के प्रसार और तीव्र प्रगति कगे चलते घट जाना चाहिए था, लेकिन यह संकट पहले से कई गुणा गहराया है। तर्क के महत्व को रेखांकित करना मैं यहां आवश्यक नहीं समझता, क्योंकि यहां मैं बौद्धिक रूप से सम्पन्न लोगों से मुखातिब हूं। आप जानते हैं कि किसी भी राष्ट्र की सामाजिक-सांस्कृतिक समृद्धि उसके तर्कों के पैनपन और गहराई से ही मापी जा सकती है। तर्कों के मरने का अर्थ है राष्ट्र की आत्मा का सड़ जाना।

यहां एक बात स्पष्ट कर दूं-तर्कहीनता अल्पज्ञता या भोलेपन या भलमानसाहत के आसपास की स्थिति है। इनकी पर्यायवाची नहीं। इस तरह की तर्कहीनता बेशक सीधे-सीधे किसी को कोई नुक्सान नहीं पहुंचाती। बशर्ते वह निजी हितों या भय की देन न हो। लेकिन परोक्ष रूप से यह हानिकारक इसलिए है कि लोगों की यह तर्कहीनता चौपालों, नोहरों, बैठकों में खाटों के सिरहाने बैठे कुतर्कों को हुक्के की तरह गुड़गुड़ाते रहने की सामाजिक मान्यता देने लगती है। इस प्रकार सामाजिक मान्यता प्राप्त कुतर्क संस्कृति को विषाणुओं की तरह बीमार करने लगते हैं।

यहां उपस्थित सुधीजनों में से शायद ही कोई इन कुतर्कों की दी हुई खीझ से बचा हो। कोई लाख तर्क करे कि नहीं भाई। मानो आप। चाहो तो चलो गिनवा दूं। तीन नहीं। बकरी के दो थन होते हैं। लेकिन यहां तीन थन बताने वाला कुतर्की पूरी ढिठाई के साथ कहता हुआ सुना जा सकता है- बेशक गिनवा दे। मैं मानूंगा तब ना।

जैसा कि मैंने कहा है-किसी भी संस्कृति की धड़कनों को, हरारत को या उत्कृष्टता को माने का सबसे कारगर मापदण्ड है उस संस्कृति में विद्यमान तर्कों की ऊंचाई और गहराई और बीमार-बोदे तर्कों के स्थान पर नए तर्कों के बनने की प्रक्रियाएं और गुंजायश। इस दृष्टि से हरियाणा की संस्कृति को देखें-परखें, तो गर्व के स्थान पर परेशानी ही होती है। मनुष्य और मनुष्यता की सुरक्षा किसी भी स्वस्थ संस्कृति का पहला सर्वोच्च तर्क होता है, लेकिन हरियाणा में कई बार ऐसा लगता रहा है। जैसे मनुष्य और मनुष्यता की सुरक्षा वाला यह तर्क अभी अपनी शैशवावस्था में है और कुतर्कों की अंगुली पकड़कर चलना सीख रहा है।

हमें इन घटनाओं को पूरी तार्किकता के साथ देखना चाहिए, क्योंकि दलितों-वंचितों का गांव से पलायन मात्र उनका पलायन नहीं है। अपितु यह कुतर्कों द्वारा उनके लोकतांत्रिक अधिकारों का देश-निकाला है। युवकों-युवतियों का बाहों में बाहें डालकर रेल के आगे कूदना या जहर खाकर आत्महत्या करना कुतर्कों के हाथों एक सुंदर लेकिन विवश तर्क की हत्या नहीं तो और क्या है? ऐसी तमाम हत्याओं पर हर बार संवेदनहीन कुतर्क गंडासी या जेली पर अपनी जीत के झंडे फहराता हुआ चौपाल के चबूतरे पर रावण के 'हमी-हम' वाला ठहाका लगाता हुआ देखा जा सकता है।

महिलाओं की स्थिति में सुधार के तमाम तर्क पुराने स्थापित सामंती कुतर्कों के आगे हां जी, हां जी करते देखे जा सकते हैं। उनकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का तर्क तो हरियाणा में अभी आकार-प्रकार ही ठीक से ग्रहण नहीं कर पा रहा और तो और यहां लड़कियों की उच्च शिक्षा का तर्क भी ठीक से पांव नहीं जमा पा रहा। इधर लिंगभेद का कुतर्क पूरे समाज के लिए अभिशाप बनता जा रहा है।

मानव इतिहास में लोकतंत्र एक बहुत बड़ा तर्क है, जो बर्बर युग के रक्तरंजित भालों-तलवारों से मानव जाति को बचाने के लिए गढ़ा गया। लेकिन हरियाणा में यह तर्क जिस तिस कारण से हमेशा खतरे में रहा है।

यहां मैं एक बात और कहना चाहता हूं-आज कुकरमुत्तों की तरह जगह-जगह श्री श्री गुरु जी, श्री श्री माता जी, श्री श्री बहन जी, श्री श्री भाई जी, श्री श्री बापू जी और इनके डेरे-संगठन उग रहे हैं। ये सब भी समाज की तर्कहीनता के ही कड़वे फल हैं। ये भी अपने-अपने हितों के पोषण के लिए भक्ति के रस में डूबो कर अलग तरह के कुतर्क हमारे समाज में फैला रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में लेखकों-बुद्धिजीवियासें का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है, जिसे शौकिया या पार्ट-टाइम लेखन के जरिए पूरा नहीं किया जा सकता। आज हरियाणा में एक बड़े नव जागरण की जरूरत है, जिसमें लेखक अपने लेखन की सार्थकता सिद्ध करते हुए अग्रणी और बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। ●

साभार-साहित्य उत्सव 2008

कहानियों के बीच बोलता : तारा पांचाल

□ डा. सुभाष चंद्र

हरियाणा के छोटे से पिछड़े कस्बे नरवाना (बकौल तारा पांचाल नरवाना कंट्री) में जन्मे तारा पांचाल एक कहानीकार के तौर पर पूरे देश में प्रतिष्ठित हुए। इनका जन्म 28 मई, सन् 1950 में हुआ। अभी वे अठावन वर्ष के हुए थे कि जानलेवा बीमारी ने उनके नाजुक से शरीर पर धावा बोल दिया। 20 जून, 2009 को वे साहित्य जगत के लिए दुखद समाचार में तब्दील हो गए। तारा पांचाल की पारिवारिक पृष्ठभूमि में साहित्य व लेखन तो क्या सामान्य शिक्षा भी प्रवेश नहीं कर पाई थी, लेकिन उनका रुझान अपनी प्रारंभिक अवस्था से ही साहित्य पठन व लेखन की ओर हो गया था। श्रमशील परिवार से उन्हें लोहे को आग की भट्टी में तपाकर मनोवांछित शक्ल में ढालने तथा समाज के लिए उपयोगी बनाने की अद्‌भुत सृजनकारी विरासत मिली। अपने जीवन अनुभवों की भट्टी में से समाज को समझने और बेहतर बनाने के लिए साहित्य-सृजन करते रहे। कहावत है कि 'लुहार छोटा और बढ़ई बड़ा' मतलब कि लुहार हमेशा नाप से कम लोहा लेता है और उसे अपनी अनुभव की चोट से पूरा करता है। छोटे कस्बे में रहकर अनुभवों के विस्तार, कहानियों के सुगठन व कसावट का रहस्य यहीं कहीं है। क्या मजाल कि सूत भर का भी फर्क रह जाए?

किशोरावस्था में ही अखबारों में उनकी लघुकथाएं व कहानियां प्रकाशित होने लगी थी। 'सारिका', 'हंस', 'कथन', 'वर्तमान साहित्य', 'पल-प्रतिपल', 'बया', 'गंगा', 'अथ', 'सशर्त', 'जतन', 'अध्यापक समाज', 'हरकारा' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में पाठक उनकी कहानियों से निरन्तर परिचित होते रहे हैं। 'गिरा हुआ वोट' संग्रह की दस कहानियों समेत तारा पांचाल की कुल चालीस के आसपास कहानियां हैं, जिनमें कुछ अप्रकाशित हैं। तारा पांचाल पर उस संकीर्ण परम्परा का प्रभाव नहीं था, जो कि ज्ञान को अपने तक ही सीमित रखती है। अपनी युवावस्था में हरियाणा के कहानीकारों की कहानियों का संग्रह 'बणछटी' का संपादन-प्रकाशन किया, जिसकी उस समय काफी सराहना हुई थी। तारा पांचाल लगातार अपने साथी रचनाकारों तथा नव-रचनाकारों को प्रोत्साहित करते रहे हैं। बेहद विपरीत परिस्थितियों में उन्होंने 'जतन' पत्रिका के संपादन की मुख्य जिम्मेवारी निभाई। उनका छोटा सा घर साहित्यिक-गोष्ठियों और विमर्श का अड्डा था। तारा पांचाल कई वर्षों तक हरियाणा के जनवादी लेखक संघ के अध्यक्ष रहे। जोड़-तोड़ करके पुरस्कार हथियाना तथा स्वयं को सर्वश्रेष्ठ रचनाकार की घोषणा के लिए हिन्दी के कथित आलोचकों व पत्रिकाओं के संपादकों के आगे-पीछे फिरना उनकी फितरत का हिस्सा नहीं था। सामाजिक सरोकारों व कलात्मकता की अपेक्षा व्यावसायिकता व सत्तासीन वर्ग की स्तुति-प्रशस्ति की प्रवृत्ति को रचनाकार का नैतिक पतन व सांस्कृतिक अवमूल्यन मानते थे। इस विषय पर 'गरुड़' तथा 'गवैया' कहानियां भी लिखी हैं। चाहे देर से ही सही, लेकिन हरियाणा की साहित्य अकादमी ने भी वर्ष 2007-08 का बाबू बालमुकुन्द गुप्त सम्मान प्रदान करके तारा पांचाल की रचनात्मक प्रतिभा का सम्मान किया।

तारा पांचाल के नाम से पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां छपती थी। प्रथमत: उनको लेखिका समझा जाता था और 'सुश्री तारा पांचाल' नाम से उनकी कहानियों के प्रशसंकों के पत्र आते थे। तारा पांचाल अपने जीवन में जितने चुप्पा थे अपनी कहानियों में उतने ही मुखर। किसी सौभाग्यशाली ने ही उन्हें मंच से बोलते सुना होगा। मंच-संकोची, आत्म-प्रदर्शन से दूर व सार्वजनिक कार्यक्रमों में चुपचाप रहने वाला व्यक्ति कहानियों में अपनी अभिव्यक्ति की पूरी कसर निकाल लेता था। अपने जीवन में विनम्र और शिष्टाचारी कहानियों में ऐसी-ऐसी कटुक्तियां और व्यंग्य कसता है कि प्रतिपक्ष तिलमिलाकर रह जाए।

तारा पांचाल बेशक हरियाणा की मिट्टी से उपजे तथा उसकी भीतरी सच्चाइयों को व्यक्त करने वाले रचनाकार मार्क्सवादी रचनाकार माने जाते रहे हैं, लेकिन उनकी समझ मार्क्सवाद के आधिकारिक पोथे पढ़कर नहीं बनी थी। उनकी समझ लोक-चेतना व लोक-संस्कृति के प्रगतिशील व प्रतिक्रियावादी तत्त्वों की टकराहट की पहचान से बनी थी। उन्होंने हरियाणा की लोक-संस्कृति व समाज को मोहग्रस्त होकर नहीं, बल्कि तार्किक ढंग से देखा-समझा। मार्क्सवादी विचारधारा ने उनके तर्क को आधार जरूर दिया। परम्परा व संस्कृति के नाम पर रूढ़ियों के अंधानुकरण की अपेक्षा उससे तर्कपूर्ण मानवीय संबंध बनाने की जरूरत महसूस करते थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त सम्मान के अवसर पर उन्होंने तार्किकता पर जोर देने के लिए कहा था। ये विचार तारा पांचाल के सृजन, सृजन-प्रक्रिया तथा उसके सरोकारों को समझने की कुंजी कहे जा सकते हैं। मनुष्य की मनुष्यता को फलने-फूलने के पूरे अवसरों वाले समाज के निर्माण के लिए तारा पांचाल कटु सच्चाइयों को व्यक्त करते हैं। जहां भी मनुष्यता पर संकट

किसी भी राष्ट्र की सामाजिक-सांस्कृतिक समृद्धि उसके तर्कों के पैनेपन और गहराई से ही मापी जा सकती है। तर्कों के मरने का अर्थ है राष्ट्र की आत्मा का सड़ जाना। ... किसी भी संस्कृति की धड़कनों को, हरारत को या उत्कृष्टता को मापने का सबसे कारगर मापदण्ड है उस संस्कृति में विद्यमान तर्कों की ऊंचाई और गहराई और बोदे-बीमार तर्कों के स्थान पर नये तर्कों के बनने की प्रक्रियायें और गुंजाइश। इस दृष्टि से हरियाणा को देखें-परखें तो गर्व के स्थान पर परेशानी ही होती है।

मंडराता दिखाई देता है, वहीं उनकी लेखनी को पंख लग जाते हैं। अपनी लेखनी के फावड़े से वे समाज की सोच पर जमे कुतर्कों के मलबे को हटाकर तर्कपूर्ण मानवीय समाज बनाना चाहते हैं।

किसी भी रचनाकार का निजी जीवन विशेषकर कथाकार का जीवन किसी न किसी रूप में उसकी रचनाओं के कथ्य का तो हिस्सा बनता ही है, बल्कि उसकी रचनाओं के रूप-संरचना को भी गहरे से प्रभावित करता है। तारा पांचाल की कहानियों में उनके आसपास का जीवन मौजूद है। सन् 2007 में हरियाणा साहित्य अकादमी ने नवोदित लेखकों की कविता तथा कहानी प्रतियोगिता करवाई, जिसके कहानी वर्ग के निणायक तारा पांचाल थे। पुरस्कार वितरण के अवसर पर नवोदित लेखकों को दिए गए संदेश में उनके अपने संकल्पों और सरोकारों से निसृत है। 'सभी नवोदित रचनाकार साथियों से मेरा आग्रह है कि वे अपने आसपास के यथार्थ को समझें, देश की वर्तमान व्यवस्था और उसकी नीयत को समझें और इस व्यवस्था में अपने पात्रों की सम्भावित भूमिका को ठीक से रेखांकित करें। यथार्थ को पकड़ने के लिए आप सुनी-सुनायी या बनी-बनायी फोरमेशन्स (formations)को अपनी रचनाओं का आधार न बनायें। इसके लिए स्वयं आपका घर है। अड़ौस-पड़ौस है। गाम-गुहांड है। आपका अपना परिवेश है, जहां असमानता है, दो जून की रोटी के लिए जद्दो-जहद है, बेरोजगारी है, महिलाओं के साथ भेदभाव है, किसानों-गरीबों के कर्जे हैं, उनकी आत्महत्याएं हैं, अपने लक्ष्यों से भटकी ओछी राजनीति है, जातिवाद है, तुच्छ राजनीतिक स्वार्थों द्वारा हमारे सामाजिक ताने-बाने को नुकसान पंहुचाने के उद्देश्य से फैलायी जा रही साम्प्रदायिक घृणा है, शोषण है, आम आदमी की पंहुच से दूर की जा रही मंहगी शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाएं हैं। कितने-कितने विषय हैं जिनके लिए न तो आपको भाषा गढ़ने की जरूरत है और न ही शिल्प के पीछे भागने की। हर विषय अपनी भाषा और शिल्प स्वयं लेकर आपके पास आयेगा। आप अपनी सहज-स्वाभाविक भाषा में पूरी प्रतिबद्धता के साथ इन विषयों को अपनी रचनाओं में मुद्दों के रूप में प्रस्तुत करें। आपका समाज परिवर्तन का यह नया रोल आपके सामने नयी-नयी चुनौतियां खोलेगा और आप इन चुनौतियों को अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठकों के आगे खोलेंगे।' (सं. तारा पांचाल व सुभाष चन्द्र, दस्तक: नवोदित लेखकों की रचनाओं का संकलन, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, पृ.-9)

तारा पांचाल कर्मचारी थे और सरकारी खजाने से वेतन प्राप्त करते थे। यदि फाकाकशी की नौबत नहीं भी थी तो उनका जीवन आर्थिक तंगी से भरा था। कर्ज और आर्थिक दबाव उनके जीवन में स्थायी थे। विश्वविद्यालय से जितने भी तरह के ऋण मिल सकते हैं वे सब लेने के बाद भी बाजार से मंहगी दर पर ऋण लेकर भी उनका काम नहीं चलता था। जब जेब में बहुत कम पैसे हों, मन में खरीदने की प्रबल आंकाक्षा हो और बाजार सजा हो तो उसमें अपने नगण्य सी पूंजी को टटोलते-संभालते व्यक्ति का मनोविज्ञान तारा पांचाल बेहतर समझते थे। 'पीपल' का रामराज, 'बिल्ली' का हुजूर सिंह, 'फोटोग्राफर' का पाली 'रामदेव का घर' का रामदेव, 'त्राहि माम त्राहिमाम' का धरणीधर मूलत: एक ही चरित्र है, जो विभिन्न शक्लों में रचनाओं में उपस्थित होता है। निम्नमध्यवर्ग के अभावग्रस्त जीवन तथा महत्त्वाकांक्षा के बीच गहरी खाई में डूबता-उतराता जीवन। अपने अभावग्रस्त जीवन के सूत्र को न पकड़ पाने के कारण 'बिल्ली' का हुजूरसिंह पत्नी को पीटकर खीझ उतारता है तो अपनी पिटाई का कारण बिल्ली को मानकर उसकी पत्नी उसे मार देती है। 'पीपल' के रामराज का खीझ का शिकार भी भिखारी होता है।

तारा पांचाल की कहानियों में वे स्वयं कई बार साफ देखे जा सकते हैं। रामदेव का घर अपने घर का ही दृश्य है।

तारा पांचाल को महफिलें सजाने और दोस्तों से गप्पें लड़ाने में खूब आनन्द आता था और यदि साथ में 'शराब की चुस्की' भी हो जाए तो वे चहकने लगते थे। असल में असली तारा पांचाल के दर्शन तो इसी तरह की बैठकों में ही होते थे। जब उनका दन्तविहीन पोपला मुंह चलता था और वे खाने के सामान में से नर्म चीजें ढूंढते हुए बीड़ी का दम लगाते थे और अपनी बात पर अड़ जाते थे। अपनी पसन्द नापसन्द पर दृढ़ता के दर्शन 'फोटोग्राफर' के पाली तथा 'मुनादियों के पीछे' के हीरो उर्फ राणा के चरित्र में होते हैं।

तारा पांचाल बातों में अत्यधिक रस लेते थे। उनकी कहानियों में आपस में बात करते तथा तरह-तरह की योजनाएं बनाते दोस्त मिल जायेंगे। बतरस की इस शैली से अपनी कहानियों में जीवंत प्रसंग दिए हैं।

तारा पांचाल की कहानियों में चुस्त संवाद भरे पड़े हैं, जिन्हें देखकर लगता है कि ये कहानियां छोटी छोटी-छोटी नाटिकाओं के कथान्तरण है। यह सब उनके बातूनी व्यक्तित्व का प्रभाव है। चाहे वे 'दीक्षा' के गुरु व चेले में संवाद हो या फिर 'निक्कल' के गुप्ता और शर्मा के बीच संवाद हो।

जाति का सवाल तारा के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। जाति का जहर सामाजिक-

''सभी नवोदित रचनाकार साथियों से मेरा आग्रह है कि वे अपने आसपास के यथार्थ को समझें, देश की वर्तमान व्यवस्था और उसकी नीयत को समझें और इस व्यवस्था में अपने पात्रों की सम्भावित भूमिका को ठीक से रेखांकित करें। यथार्थ को पकड़ने के लिए आप सुनी-सुनायी या बनी-बनायी फोरमेंशन (formations)को अपनी रचनाओं का आधार न बनायें। इसके लिए स्वयं आपका घर है। अड़ौस-पड़ौस है। गाम-गुहांड है। आपका अपना परिवेश है, जहां असमानता है, दो जून की रोटी के लिए जद्दो-जहद है, बेरोजगारी है, महिलाओं के साथ भेदभाव है, किसानों-गरीबों के कर्जे हैं, उनकी आत्महत्याएं हैं, अपने लक्ष्यों से भटकी ओछी राजनीति है, जातिवाद है, तुच्छ राजनीतिक स्वार्थों द्वारा हमारे सामाजिक ताने-बाने को नुकसान पंहुचाने के उद्देश्य से फैलायी जा रही साम्प्रदायिक घृणा है, शोषण है, आम आदमी की पंहुच से दूर की जा रही मंहगी शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाएं हैं। कितने-कितने विषय हैं जिनके लिए न तो आपको भाषा गढ़ने की जरूरत है और न ही शिल्प के पीछे भागने की। हर विषय अपनी भाषा और शिल्प स्वयं लेकर आपके पास आयेगा।

संरचना में गहरे तक घुला है। जाति को तोड़े बिना लोकतांत्रिक समाज की कल्पना संभव नहीं है, इसीलिए उनकी कहानियों में वह बार-बार आ जाता है। 'निर्माता', 'कलगी', 'निक्कल' में विशेषतौर पर आता है। ग्रामीण समाज की सत्ता संरचना में लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को ठेंगा दिखाते हुए जाति किस तरह महत्त्वपूर्ण हो जाती है, 'कलगी' कहानी इसे व्यक्त करती है। 'सब जानते हैं कि पंचायत में जब कोई बात चमेला कहेगा तो वह बात आने-दो आने या मुश्किल से चार आने की होगी। जब वही बात कोई बामण कहेगा तो कम से कम बारह आने जरूर ही होगी। और अगर वही या उससे भी हल्की बात चौधरी या चौधरी की जात का कोई आदमी कहेगा तो वह सवा सोलह आने सही मानी जायेगी। सारा जमाना जानता है कि पंचायतों में वजन कही गई बात का नहीं - कहने वाले की जात का होता है' ऐसी सामाजिक स्थिति में किसी दलित की भागीदारी को आसानी से समझा जा सकता है।'

जातिगत पूर्वाग्रहों को आधुनिक शिक्षा भी दूर नहीं कर पाई। 'निक्कल' कहानी के शर्मा और गुप्ता जी की बातचीत इसका खुलासा करती है। चन्दर अनुसूचित जाति से संबंधित है। अपनी प्रतिभा के बल पर सामान्य श्रेणी में उसका चयन होता है। शर्मा जी चन्दर की प्रतिभा-कर्मठता-ईमानदारी के कायल भी हैं, लेकिन उसकी जाति का पता चलते ही चन्दर की प्रतिभा-योग्यता जातिगत पूर्वाग्रहों के सामने धरे के धरे रह जाते हैं। उसके अपमान और उत्पीड़न की योजना बन जाती है।

अपने राजनीतिक स्वार्थों के कारण समाज का सत्तासीन वर्ग जातिगत सभाओं व संगठनों के उभार की प्रेरक राजनीति तथा इसके वर्गीय चरित्र को 'निर्माता' कहानी में उद्घाटित किया है। कथित पिछड़ी व अछूत जातियों में भी ब्राह्मणवादी ऊंच-नीच व्याप्त है। सभी जातियों का सामाजिक-आर्थिक शोषण होता है। शोषण का विरोध करने के लिए एकत्रित भी होते हैं, लेकिन सामाजिक एकता के अभाव में यह प्रभावी शक्ति नहीं बन पाता। आर्थिक-शोषण के विरुद्ध एकता का आधार सामाजिक एकता के बिना एकदम दरक जाता है।

तारा पांचाल कहानी में किसी न किसी चरित्र के माध्यम से प्रवेश करके सीधे-सीधे अपनी बात कहने का ढंग निकाल लेते हैं। 'कलगी' कहानी में दस्तकारों की बैठक में और सभी उत्साह व जोश में है, सब अपने-अपने पेशे के संकटों व मजदूरी बढ़ाने की जरूरत पर बात करते हैं। तारा पांचाल अबने नाई के लड़के के रूप में प्रकट हो जाते हैं। 'अबने नाई का लड़का जीवन जो कि शहर में दुकान करता है - कुछ हिचकता हुआ मगर जोश में खड़ा हुआ और बोला, 'बुजुर्गो और भाइयो, इस तरह अपनी-अपनी कहने से बात नहीं बनेगी।

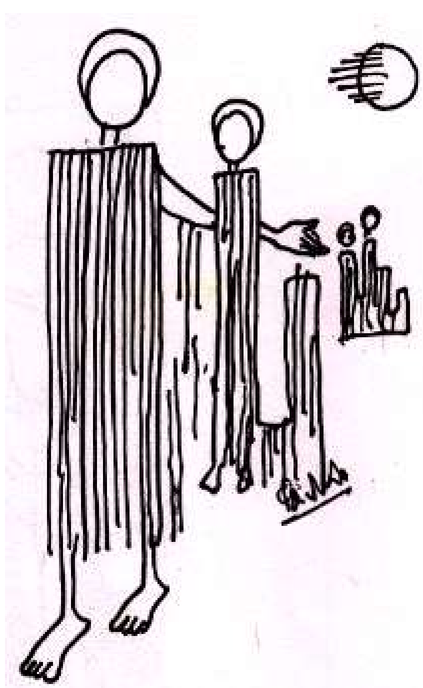

हमें आज पूरी गम्भीरता से सब कुछ सोचना चाहिए। आप सब मेरी एक अर्ज सुनें सिर्फ दो मिन्ट चुप हो जाओ ...' सब चुप होने लगे लेकिन अपनी-अपनी कहने को सभी कसमसा रहे थे। 'आप सब मेरे से बड़े हो - कोई गलत बात कही जाये तो सौ जूत मारना पर समाई से मेरी बात सुन लो।' जीवन के कहने का सब पर असर हुआ और वे चुप हो गए। 'यहां सब जात के लोग जमा हैं। कुम्हार, लुहार, नाई, बढ़ई, खाती सब जात के। मेरा बाप, मेरा दादा तुम सबके ब्याह-मुकलावों में नाई-पणा करते रहे हैं। यानी नाई सब का सीर का होता है। तुम सब हमारे जजमान हो। तो जजमानों, जब नाई सब का सीर का हो सकता है तो तुम्हारा हुक्का सीर का क्यूं नहीं हो सकता। आज हम मिलकर लड़ाई लड़ने की बात कर रहे हैं - पर कैसे? कुम्हार अपना हुक्का अलग गुड़गुड़ा रहे हैं, लुहारों की चिलम अलग बज रही है। बढ़ई अलग और नाई अलग। हम सब एक-दूसरे से बड़ा बनने और दिखाने की कोशिश करते रहते हैं लेकिन चौधरी के पास जाकर सब म्याऊँ बन जाते हैं। किसलिए? इसीलिए ना कि आप सब उसकी ड्योढ़ी में अपना-अपना स्वार्थ लेकर जाते हो और जी-हजूरी करते हो। हाँ एक बात और हमारी लड़ाई सिर्फ चौधरी से है - उसकी जात के सब लोगों से नहीं। वे तो बिरादरी के नाम पर उसका साथ देते हैं - नहीं तो उनमें से काफी हमीं जैसे हैं। इसलिए जजमानो ...' खुसर-फुसर शुरू हो चुकी थी। लगता था जीवन की बात सबको जँची है पर बीच-बीच में विरोध भी बढ़ रहा था।'

कहानी के वे अंश सबसे प्रखर हो जाते हैं, जहां तारा पांचाल अपने विचार प्रकट करते हैं। यह सुविचारित निष्कर्ष पाठक की चेतना में मुद्दे को स्पष्ट कर जाता है। 'निर्माता' में बलिन्दर के माध्यम से जाति सभाओं पर टिप्पणी कर जाते हैं 'कमाल तो ये है कि अभी कुछ ही वर्षों में अग्रवाल सभा, ब्राह्मण सभा, जाट सभा, रोड सभा, जहां देखो सभा ही सभा हो गई हैं - और जहां जिस शहर में देखो इन सभाओं के बोर्ड लगे मन्दिर और धर्मशाला। एक जाति है - झीमर - बिल्कुल गरीब - लेकिन मन्दिर और धर्मशाला बने हैं और बोर्ड लगा है - कश्यप राजपूत सभा - अपने-अपने पूर्वजों को देवता की तरह स्थापित करने पर तुले हैं। याद है हमने इतिहास में कबीले पढ़े थे - ये भी वैसा ही नहीं है।'

'गरुड़' में कवि की पत्नी के रूप में उसकी रचना की निरर्थकता पर व्यंग्य कर जाते हैं 'वह थकी-हारी-सी उठी और 'हिन्दी कविता यात्रा' वाली वह पुस्तक साँझ के लिए तैयार हो रहे गरुड़ के आगे जा पटकी। 'आपके इतने बड़े-बड़े अफसर प्रशसंक हैं। आपका मंत्रियों तक में उनकी स्तुति लिखने के कारण प्रभाव है। मुख्यमंत्री के उस बेटे से ही सही जिसने आपसे पढ़ा होने के कारण आपको 'राज्यकवि' बनवाया था - कहीं से

भी, किसी भी तरह ऐसी-ऐसी राष्ट्रीय स्तर की एकाध पुस्तक में अपना नाम तो जुड़वा लो। हमारे बच्चे इन पुस्तकों में आपका नाम ना पाकर कैसे स्वीकार करेंगे कि हमारा बाप कवि था।'

'खाली लौटते हुए' में बूढ़े के माध्यम से पूरी चिकित्सा-व्यवस्था पर तीखी टिप्पणी कर जाते हैं। 'ओफ़्हो ... उस ठग पर क्यूं गए ... वो तो पानी के सूए लगा के और बीमार कर देगा ... बड़े हस्पताल में दिखाते ... लोग मानते ही नहीं उस पर जाये बिना, पर लोग भी क्या करें और कहाँ जायें ...।' वह स्वयं ही कह रहा था, स्वयं ही नकार रहा था और सुन भी स्वयं ही रहा था, 'ये हस्पताल तो गौरमिन्ट ने पब्लिक के लिए नहीं, डॉक्टरों और नर्सों के लिए बनवाया है ...।'

तारा पांचाल अपनी कहानियों के प्लॉट की खोज में कस्बे तथा गांव के उपेक्षित हिस्सों में कई-कई दिनों तक चुपचाप भटकते थे और इसी कूड़े समझे जाने हिस्सों से मोती चुनकर लाते थे। लकड़ी के टुकड़ों की विभिन्न आकृतियां, पक्षियों के घोंसले व पंख तथा पत्थर के टुकड़े उनके कमरे की शोभा भी बढ़ाते थे। 'फोटोग्राफर' के पाली की तरह उनको भी मनवांछित स्थिति नहीं मिलती तो वे उपलब्ध स्थिति को अपनी कल्पना से मेनीपुलेट करते और अनुकूल नतीजे पर बच्चे की तरह चहकते थे।

कहानी के प्लॉट की तलाश के लिए संघर्ष का नतीजा ही है कि हर कहानी एक मुकम्मल संसार को प्रस्तुत कर देती है। एक ऐसा संसार जो आमतौर पर सामान्य व्यक्ति की नजर से ओझल होता है। 'दीक्षा' कहानी का विशेष तौर पर जिक्र किया जा सकता है। सन्तों के जीवन के बारे में आमतौर पर कोई जानकारी नहीं होती। मंदिरों के बारे में आम धारणा यही है कि यह बहुत ही पवित्र स्थान है और व्यवस्थापक धर्मनिष्ठ व पवित्र आत्मा। तारा पांचाल की पैनी दृष्टि मंदिरों के गर्भ गृह के षड्यन्त्रों को पाठक के सामने रख देते हैं। खोजी पत्रकार की तरह पाठक के समक्ष रहस्य को उद्घाटित करते जाते हैं।

तारा पांचाल की कहानियों में दो स्थितियां या दो वर्ग मौजूद होते हैं, जिस कारण विभिन्न वर्गों व स्थितियों का अन्तर बहुत ही तीखेपन के साथ उद्घाटित होता है। 'दरअसल' कहानी में एक तरफ विज्ञान का कार्यक्रम है, तो दूसरा हनुमान मंदिर के उद्घाटन का। मंत्री निर्धारित विज्ञान-कार्यक्रम की बजाए आकस्मिक निमन्त्रण पर हनुमान मंदिर के उद्घाटन पर जाना पसन्द करता है। इससे उसके राजनीतिक संस्कृति, पिछड़ी सोच व सराकारों को आसानी से पता चल जाता है। 'पीपल' कहानी में एक तरफ तो ऐसा वर्ग है, पूरे दिन बाजार में घूमने के बाद भी खाने-पकाने के बर्तन तथा तन ढकने के लिए कपड़ा जैसे निहायत आवश्यक खरीदने की हिम्मत नहीं कर पाते। दूसरी तरफ समाज का वह वर्ग है, जो बिना मोल भाव किए अपनी सनक पूरी करने के लिए सामान खरीदता है। दोनों वर्गों के रहन-सहन, सोच-विचार व आर्थिक हालत के अन्तर को बताने के लिए यह बहुत ही कारगर टेक्नीक साबित हुई है। ये तभी संभव है जब कि रचनाकार को समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन की गहरी समझ हो। विभिन्न वर्गों के परस्पर विपरीत व्यवहार को उद्घाटित करने के लिए समानान्तर रूप से दो वर्गों का वर्णन भीष्म साहनी की याद दिला जाता है।

'आप सब मेरे से बड़े हो - कोई गलत बात कही जाये तो सौ जूत मारना पर समाई से मेरी बात सुन लो।' जीवन के कहने का सब पर असर हुआ और वे चुप हो गए। 'यहां सब जात के लोग जमा हैं। कुम्हार, लुहार, नाई, बढ़ई, खाती सब जात के। मेरा बाप, मेरा दादा तुम सबके ब्याह-मुकलावों में नाई-पणा करते रहे हैं। यानी नाई सब का सीर का होता है। तुम सब हमारे जजमान हो। तो जजमानों, जब नाई सब का सीर का हो सकता है तो तुम्हारा हुक्का सीर का क्यूं नहीं हो सकता। आज हम मिलकर लड़ाई लड़ने की बात कर रहे हैं - पर कैसे? कुम्हार अपना हुक्का अलग गुड़गुड़ा रहे हैं, लुहारों की चिलम अलग बज रही है। बढ़ई अलग और नाई अलग। हम सब एक-दूसरे से बड़ा बनने और दिखाने की कोशिश करते रहते हैं लेकिन चौधरी के पास जाकर सब म्याऊँ बन जाते हैं। किसलिए? इसीलिए ना कि आप सब उसकी ड्योढ़ी में अपना-अपना स्वार्थ लेकर जाते हो और जी-हजूरी करते हो। हाँ एक बात और हमारी लड़ाई सिर्फ चौधरी से है - उसकी जात के सब लोगों से नहीं। वे तो बिरादरी के नाम पर उसका साथ देते हैं - नहीं तो उनमें से काफी हमीं जैसे हैं। इसलिए जजमानो ...'

तारा पांचाल की सहानुभूति निम्नवर्ग के साथ स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है। वे तटस्थता की उदासीन मुद्रा नहीं अपनाते और न ही पाठक के विवेक पर पक्षधरता का निर्णय छोड़ते हैं। स्थिति का प्रतिपक्ष या तो उसके अन्दर से ही खड़ा करते हैं जैसे 'निक्कल' कहानी के शर्मा जी और गुप्ता जी अपने जातिगत पूर्वाग्रह को बहुत खुलकर नहीं कहते, बल्कि संकेतों व इशारों में ही बतियाते हैं। अपने विचारों को शब्दों में अभिव्यक्त न करना उनकी मंशा पर स्वतः ही प्रश्नचिन्ह लगाता है। यदि अन्दर इसकी गुंजाइश न हो तो उसके बिल्कुल निकट ही एक आलोचक खड़ा कर देते हैं जैसे 'गरुड़' कहानी में कवि की पत्नी।

तारा पांचाल की कहानियों में भाषा के कई स्तर हैं। 'त्राहि माम त्राहि माम' की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी तथा 'बिल्ली' की पंजाबी के अलावा अधिकतर कहानियों में आम बोलचाल की हिन्दी तथा ठेठ हरियाणवी है। तारा पांचाल प्रतीकों के अर्थ-विस्तार की संभावना तथा प्रभाव को समझते थे और उनका बखूबी प्रयोग करते थे। कहानियों के शीर्षक प्रतीकात्मक रखने की भरसक कोशिश करते थे। मुझे याद है कि उन्होंने शिक्षा के सवालों पर आधारित कहानी का नाम रखा था 'पर्यावरण'। लेकिन 'अध्यापक समाज' पत्रिका ने उसे 'मास्टर जी' नाम से प्रकाशित किया तो वे इसे अन्त तक भी स्वीकार नहीं कर पाए थे। तारा के प्रतीक स्थिति को व्यक्त करने में सक्षम हैं।

'निक्कल' कहानी में गुप्ता जी सिगरेट जलाने के लाइटर पर लगी निक्कल को खुरच देते हैं और उसके नीचे जंग लगा लोहा निकल आता है। उसी तरह गुप्ता और शर्मा की सोच पर जो आधुनिकता का, निष्पक्षता, प्रतिभा का निक्कल भी उघड़ जाता है और जंग लगी सोच उजागर हो जाती है। 'कलगी' दलितों को सत्ता में वास्तविक भागीदारी की बजाए प्रतीकात्मक तौर पर ही भागीदारी

को व्यक्त करने में सक्षम है।

विभिन्न पेशों व वर्गों से जुड़े चरित्रों के मनोविज्ञान तथा उनके व्यवहार की तारा पांचाल की अद्‌भुत समझ थी। वे जिस भी चरित्र का निर्माण करते, उसके अन्दर घुस जाते थे। चरित्रों की यह समझ ही उनकी कहानी की सर्वाधिक ताकतवर चीज है। तारा पांचाल की कहानियों के चरित्र बिल्कुल मकैनिकल नहीं होते। अपनी सोच को वे चरित्रों पर कभी इस हद तक हावी नहीं होने देते कि वे यथार्थ से कोसों दूर चले जाएं या फिर मनमर्जी के कार्य उनसे करवा दें। इसीलिए तारा पांचाल की कहानियों के चरित्र एकदम विश्वसनीय लगते हैं।

सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलनों के संघर्षशील तेजस्वी चरित्र जो पाठक को ऊर्जा देते है, वे यहां गायब हैं। तारा पांचाल की कहानियों के चरित्रों में परिवर्तन की छटपटाहट नहीं है, वे अपनी स्थितियों को भोगने व सहन करने को अभिशप्त हैं। वे संघर्ष करते दिखाई नहीं देते, बल्कि एक स्थिति का शिकार हैं। अधिकांश पात्र अपनी नियति को झेलने को विवश हैं। कहानियों के पात्र त्रासदी का शिकार हैं।

तारा पांचाल का प्रखर व्यंग्य स्थिति की विडम्बना तथा दोगले चरित्र की परतों को उद्‌घाटित करने में सक्षम है। व्यंग्य का प्रयोग खिल्ली उड़ाकर उसमें रस लेने के लिए नहीं, बल्कि पाठक को अपने मंतव्य तक ले जाने में मदद करता है, इसलिए कहानियों की संरचना का अनिवार्य हिस्सा है। 'दरअसल' व 'गिरा हुआ वोट' के राजनीतिक संस्कृति व व्यवहार, 'गरुड़' में लेखक की भांडगिरी, 'निक्कल' में जातिगत पूर्वाग्रहों को उद्‌घाटित करने के लिए व्यंग्य का इतना रचनात्मक प्रयोग लेखक की भाषा व सामाजिक जीवन पर पकड़ को ही दर्शाता है।

पाठकों की संवेदनाओं बने बनाये सांचों-ढांचों को तोड़ने की जद्दोजहद में ही कोई लेखक कुछ सृजनात्मक दे पाता है। लेखक की संवेदनाओं के भी ढांचे बन जाते हैं, जिन्हें तोड़कर ही कोई लेखक दोहराव से बच सकता है। 'गिरा हुआ वोट' संग्रह के प्रकाशन के बाद उनकी रचनाधर्मिता में एक नया मोड़ आया। कथ्य के साथ कथा-शैलियों व कथा-युक्तियों में भी परिवर्तन देखा जा सकता है। 'रामदेव का घर' पत्र-शैली, 'फोटो में बच्चा' में अद्‌भुत वर्णन क्षमता तथा 'त्राहि माम त्राहि माम' में जीवंत किस्सागोई को देखा जा सकता है। तारा पांचाल ने यथार्थ को व्यक्त करने की कई नई तकनीकों को अपनाया। विशेषतौर पर जादुई यथार्थ की तकनीक को। 'त्राहि माम त्राहि माम' में न केवल भाषा के स्तर पर भारी बदलाव है, बल्कि पुराकथाओं का भी आधुनिक संदर्भों को समझने के लिए सृजनात्मक व्याख्या की गई है। वर्तमान को समझते हुए पूरी परम्परा की व्याख्या की छटपटाहट बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यह प्रसिद्ध कवि व व्यंग्यकार इब्ने इंशा की याद ताजा कर देती है, जिन्होंने प्राचीन नीति कथाओं को लगभग नए ढंग से लिखा और वर्तमान को समझने के लिए उनका बहुत ही सृजनात्मक प्रयोग किया है।

विभिन्न पेशों व वर्गों से जुड़े चरित्रों के मनोविज्ञान तथा उनके व्यवहार की तारा पांचाल की अद्‌भुत समझ थी। वे जिस भी चरित्र का निर्माण करते, उसके अन्दर घुस जाते थे। चरित्रों की यह समझ ही उनकी कहानी की सर्वाधिक ताकतवर चीज है। तारा पांचाल की कहानियों के चरित्र बिल्कुल मकैनिकल नहीं होते। अपनी सोच को वे चरित्रों पर कभी इस हद तक हावी नहीं होने देते कि वे यथार्थ से कोसों दूर चले जाएं या फिर मनमर्जी के कार्य उनसे करवा दें। इसीलिए तारा पांचाल की कहानियों के चरित्र एकदम विश्वसनीय लगते हैं।

पहले की कहानियों में एक पंड़ित, एक सेठ, एक राजनेता की मिलीभगत तथा अभावों से जूझते निम्न वर्गीय पति-पत्नी होते थे, लेकिन बाद की कहानियों के रूप-आकार में ही बढ़ोतरी नहीं हुई, बल्कि विषयवस्तु में भी गुणात्मक परिवर्तन हुआ। 'फोटो में बच्चा' अथवा 'त्राहि माम त्राहि माम', 'मुनादियों के पीछे', 'झूठे', 'मैं मंदिर के गर्भ गृह से बोल रहा हूं' आदि कहानियों में इसे देखा जा सकता है।

वैश्वीकरण के युग के परिवर्तनों को समग्रता में पकड़ने व व्यक्त करने की जद्दोजहद यहां दिखाई देती है। पहले की कहानियों में पंडित निहायत दयनीय और याचक की सी भूमिका में आता था और भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और सेठों के जुनियर पार्टनर के तौर पर ही प्रस्तुत होता था। लेकिन साम्प्रदायिक राजनीति के उभार से वह केन्द्र में आ गया। आर्थिक-सामाजिक असुरक्षा के वातावरण में धार्मिक कर्मकांड भी बढ़ रहे हैं और इससे उसकी भूमिका बदल गई है। 'दरअसल' कहानी का पंडित जो किसी मंत्री की कृपा पाने को आतुर था वह अब 'मैं मंदिर के गर्भ गृह से बोल रहा हूं' के देवीशरण के रूप में विभिन्न संस्थाओं का संचालक बनकर शक्तिशाली हो गया है। 'पंडित देवीप्रसाद मिश्र, प्रधान पुजारी एवं मालिक प्राचीन श्री देवीमाता मंदिर, प्रधान श्री देवीशरण माता कांवड सेवा समिति, प्रधान श्री देवीमाता वृद्धाश्रम, श्री देवीमाता गऊशाला, धर्मशाला, धर्मार्थ औषधालय, मानव सेवा समिति, एंबूलेंस सेवा समिति, राज्य स्तरीय मंदिर-निर्माण परिषद्‌, रामायण प्रचार समिति, दशहरा कमेटी और प्रधान श्री देवीमाता धर्म प्रचार परिषद्‌ आदि आदि'

बेशक पंडित यहां शक्तिशाली दिखाई देता है, लेकिन सच्चाई यही है कि कर्मकांडी व संस्थागत धर्म के तमाम प्रपंचों व आडम्बरों को पूंजी ही संचालित कर रही है। उदारीकरण-युग की आवारा पूंजी ने अपना सुरक्षित ठिकाना धर्म स्थलों में ढूंढा है। कथित 'बाबाओं', 'बापूओं', 'माताओं' के कुकरमुत्तों की तरह उगे आश्रमों-डेरों और उनमें जाने वाले लोगों के लंगार के लंगार में कुछ न कुछ संबंध तो अवश्यमेव है। और अंतत: पूंजी का ही इस पर नियंत्रण रहता है। 'मैं मंदिर के गर्भ गृह से बोल रहा हूं' का सेठ उसके पंडित को अच्छी तरह उसकी व पूंजी की हैसियत दर्शा भी देता है, जब वह कहता है कि 'उसने बहकते हाथों से रिमोट का बटन दबा दिया। खिड़की खुलते ही उसने पंडित देवीशरण को धक्का दे दिया। गिलास वाला पैग भी खिड़की में से उन्हीं पर उछाल दिया, 'चल भाग...जैसे हम फद्दू हैं जो तुझे पाल रहे हैं। और सुन बे। कान खोलकर सुन ... हम वही करते हैं जो हमें सुहाता है और उसी की पीठ पर हाथ फेरते हैं जो हमारे अनुसार सब कुछ करता है ... तू हमें फद्दू समझता है ... इन तिलक-विलकों से फद्दू डरते होंगे ... हम नहीं ...इसके साथ ही फट से खिड़की बंद हो

गई और सर्र से कार चली गई'

वैश्वीकरण ने समाज के विभिन्न वर्गों को अलग-अलग तरह से प्रभावित किया है। तारा पांचाल ने जीवन पर वैश्वीकरण के पड़ने वाले प्रभावों को व्यक्त किया है। 'फूली' तथा 'त्राहि माम त्राहि माम' कहानी का विशेषतौर पर जिक्र किया जा सकता है। वैश्वीकरण की नीतियों से जहां सामान्य जन के समक्ष संकट बढ़ गया है, तो एक वर्ग को माला माल भी किया है। वैश्वीकरण से संपन्न वर्गों की संपन्नता में इजाफा हुआ है। वैश्वीकरण में दो वर्गों के बीच की खाई ओर गहरी हुई है। एक तरफ विकास ही विकास है तो दूसरी तरफ अभाव ही अभाव।

'यह भूमंडलीकरण का समय है। यह निष्कर्षों पर पहुंचने का नहीं अपितु दत्त-निष्कर्षों पर पैनी व सचेत दृष्टि रखने का समय है। सत्ता-तंत्र के लोग स्वयं उचित-अनुचित का भेद करने में अक्षम दिखने लगे हैं। ऐसा लगता है कि जैसे कि वे किसी राजा की तरह सोच रहे हों - सुनो, सुनो, सुनो! नगरवासियों सुनो। कल हम अपनी प्रजा को उपहार बाटेंगे। हर व्यक्ति उपहार डलवाने के लिए अपना पात्र स्वयं लेकर आए। जिस व्यक्ति का जैसा पात्र होगा उसे वैसा ही उपहार दिया जाएगा। स्वर्ण-पात्र में स्वर्ण-मुद्राएं, रजत-पात्र में रजत-मुद्राएं, ताम्र-पीतल के पात्रों में छोटे सिक्के तथा मिट्टी या अन्य धातु के पात्रों में दाल-भात हम स्वयं अपने हाथों से बांटेंगे।'

'कैसा समय है यह! पूरा नगर चौंधियाने वाले प्रकाश से चमक रहा है और मानव के चारों ओर अंधकार घिरता जा रहा है। दिन भर नगर के चौड़े-चिकने मार्गों पर क्रयऽ-क्रयऽ, विक्रयऽ विक्रयऽ, लाऽऽभ-लाऽऽभ .....निवेऽऽऽश - निवेऽऽऽश सुनाई देता है। इधर तंग गलियों की भूख की बातें, रोटी की बातें तंग होकर दम तोड़ रही हैं - कैसा समय है यह?' ....स्वः चालित यंत्र हैं। यंत्र चालित मानव हैं। संवेदनहीन मानव प्रया सरत हैं यंत्रों को अधिकाधिक संवेदनशील बनाने को। कैसा समय है यह? कलियुग से भी बड़ा बनकर भूमंडलीकरण खड़ा है। कलियुग की पीठ पर धर्म और धर्म की पीठ पर भूमंडलीकरण चढ़ा है। धर्म के पीछे लगाया जा रहा है लोगों को और धर्म लगा है बाघ की तरह लोगों के पीछे। कैसा समय है यह?

सम्पर्क-प्रोफेसर हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र-मो. 94164-82156

सामाजिक-सांस्कृतिक जनतंत्र के कहानीकार - तारा पांचाल

राजवीर पराशर

तारा पांचाल ने कहानी लेखन करते हुए हिन्दी साहित्य की यथार्थवादी परंपरा को समृद्ध किया है। हरियाणा में साहित्य व्यवहार की जो निखरी हुई, प्रगतिशील अभिव्यक्ति है, तारा पांचाल उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। साहित्य जगत के भीतर की अकादमिक चकाचौंध, लम्पट बौद्धिकता व प्रायोजित 'साख' से दूर, तारा पांचाल का समस्त रचनाकर्म आत्मकेंद्रित लेखकों व पाठकों की साहित्यिक अवधारणाओं को खंडित करता है। उनके कहानी लेखन व प्रेमचंद की परंपरा से एक सीधा या आंतरिक संवाद है, जो एक-दूसरे को निरंतर समृद्ध करता है। यही वजह है कि सार्वजनिक मंचों व आयोजनों में सामान्यतः कम दिखाई देने वाले या पीछे रहने वाले तारा पांचाल का कहानी लेखन साहित्य-संस्कृति से जुड़ी तमाम बहसों से एक जीवंत रिश्ता बनाए रखता है। उनके लेखन व व्यक्तित्व में महत्वपूर्ण लेखन होने का दंभ व आत्मप्रचार करने वाली बनावटी विनम्रता नहीं है। तारा पांचाल समकालीन हिन्दी कहानी की वह महत्वपूर्ण कड़ी है, जिसमें बीसवीं सदी से इक्कीसवीं सदी के कहानी लेखन में प्रविष्ट होने के सूत्र व निरंतरता मौजूद है। लेकिन उनकी तमाम रचनाओं की ये खूबी है कि वे हरियाणा के सांस्कृतिक संदर्भों, बोल-चाल व लोक व्यवहार से काफी कुछ ग्रहण करती हैं। शायद तारा पांचाल ही ऐसे लेखक हैं जो हरियाणा की क्षेत्रीय व सांस्कृतिक पहचान को महिमा मंडित किए बिना उसे अपने सोच-विचार व लेखन में जरूरी रूप से शामिल करते हैं।

पिछले दो दशकों से साहित्य के क्षेत्र में कई बदलाव आए हैं। एक तरफ, उत्तर-आधुनिकता, इलैक्ट्रोनिक मीडिया, विज्ञापन व अन्य प्रभावों से साहित्यकारों में भी फैशनेबल ढंग से 'विमर्शों' में शामिल होने का रूझान बढ़ा है। दलित साहित्य व स्त्री लेखन में जनवाद व प्रगतिशील लेखकों का एक सेक्शन संशयवाद का शिकार होकर मध्यम वर्ग केंद्रित हो चुका है। भाषायी दक्षता, कृत्रिम विडम्बनात्मकता व जादुई यथार्थ जैसी उत्तर आधुनिक प्रवृतियों ने हिन्दी साहित्य को हिन्दी क्षेत्र की ठोस सच्चाइयों से विछिन्न करने का गैर जनपक्षीय रूझान बनाया है। इन भारी बदलावों के बीच तारा पांचाल की लेखन यात्रा सहज ढंग से जारी है। जिस संवेदनशीलता व सामाजिक प्रतिबद्धता से उन्होंने लेखन किया है, उसमें जनतांत्रिक आकांक्षाओं के नए रूपों के लिए पर्याप्त जगह भी है और सामंती-प्रतिक्रियावादी, साम्प्रदायिक मूल्यों के प्रतिरोध की दृढ़ता भी तारा पांचाल ने 'गिरा हुआ वोट' (1991) के प्रकाशन से जो साहित्य यात्रा शुरू की, वह अब काफी व्यापक व गहन हो चुकी है। हिन्दी साहित्य में उन्हें 'आगे के' कहानीकारों में माना जाता है। तारा पांचाल की विशिष्टता उनके लेखन के विकास में साफ दिखाई पड़ती है। सामान्यतः कहानीकारों का पहला संग्रह प्रकृतवाद का अनुभववाद की सीमाओं से ग्रस्त पाया जाता है। 'गिरा हुआ वोट' की अधिकांश कहानियां सामाजिक जीवन की अनदेखी परतों को खोलती हैं। इस संग्रह में दस कहानियां हैं। हर कहानी में रचनाकार पाठक को हरियाणवी-हिन्दी क्षेत्र की सामाजिक विडम्बनाओं से रूबरू करवाता है। 'दीक्षा', 'दरअसल', 'खाली लौटते हुए', 'निक्कल', 'पीपल', 'बिल्ली', 'गरूड़', 'कलगी', 'निर्माता-मध्यम् व निम्न वर्गीय जीवन के विभिन्न जटिल पक्षों को उद्घाटित करती हैं। कहानियों में व्यवस्था का विरोधमात्र नहीं है, बल्कि आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था का भीतरी दोगलापन बेबाक ढंग से रेखांकित किया गया है। तारा पांचाल की पैनी दृष्टि से न तो अवसरवादी राजनीति, जैसे कि 'गिरा हुआ वोट', न ही अवसरवादी साहित्यकार- 'गरूड़' बच सकते हैं। वास्तव में तारा पांचाल का पहला कहानी संग्रह 'गिरा हुआ वोट' एक अडिग आत्मविश्वास व नैतिक ठोसपन से भरा है, जो 'पाठक' को नैतिक सम्बल के साथ-साथ सकारात्मक बदलाव का भरोसा भी देता है। 'निक्कल' और

'कलगी' जाति व्यवस्था पर टिके सामाजिक ढांचे की सच्चाई उजागर करती हैं।'कलगी' में जातीय शोषण को गहरी संवेदनशीलता, सूक्ष्मता व वस्तुपरक ढंग से चित्रित किया गया है। तारा पांचाल इस कहानी में गांव की सरल एवं रोमांटिक छवि को तोड़ते हैं। गांव का पूरा सामाजिक जीवन, मूल्य, न्याय व्यवस्था व पंचायत की कार्यप्रणाली जातीय भेदभाव पर टिकी है। सामाजिक जनतंत्र के बिना राजनीतिक जनतंत्र कितना अधूरा व नकली है, चमेला के ये शब्द स्पष्ट करते हैं, 'हर कोई जानता है कि पंचायत में अब चमेला बोलता है, तो उसकी बात एक या दो आने की है। अगर एक ब्राह्मण कुछ कहता है तो उसकी बात बारह आने की है। लेकिन एक चौधरी की बात 16 आने की है। सारी दुनिया जानती है कि पंचायत का फैसला किसी की बात के वजन पर निर्भर नहीं करता, बल्कि बात करने वाली की जाति पर निर्भर करता है।' 'निर्माता' में तारा पांचाल जाति व्यवस्था व साम्प्रदायिकता की समस्या को राजनीतिक व्यवस्था में अवसरवाद से जोड़कर देखते हैं।'गिरा हुआ वोट' में 'गरूड़' साहित्यिक परिवेश को केंद्र में रखकर लिखी गई कहानी है। हिन्दी क्षेत्र या हरियाणा विशेष में साहित्यकार के जो सीमित अर्थ स्थापित किए जाने की कोशिश है, तारा पांचाल उसका अवसरवादी व काईयां चेहरा उद्घाटित करते हैं। जीवन की बृहतर सच्चाई से से विभिन्न व वर्चस्ववादी संस्कृति के भौंडेपन पर इतराता राजकवि 'गरुड़' व्यक्ति नहीं एक रूपक है। 'गरुड़' साहित्य-संस्कृति के उस छद्म रूप-व्यवहार का प्रतिनिधित्व करता है, जो साहित्य का रचयिता नहीं 'उपभोक्ता' है। वह साहित्य को समृद्ध करने की बजाए उसका अवमूल्यन करता है। तारा पांचाल प्रलोभन व अवसरवाद पर टिकी गरुड़-संस्कृति का सतहीपन व खोखलापन उजागर करते हैं। मुक्तिबोध की तरह तारा पांचाल लेखक बनने के लिए 'हृदय की तगारी' व 'तसला' की जरूरत पर बल देते हैं व 'सफलता की आंख' से लिखे गए साहित्य की सीमाओं को स्पष्ट करते हैं।

बीसवीं सदी के आखिरी दो दशक हिन्दी क्षेत्र के सांस्कृतिक जीवन में भारी बदलावों का दौर है। अन्ध-राष्ट्रवाद, साम्प्रदायिकता, प्रतिक्रियावादी सांस्कृतिक उभार व उपभोक्तावाद साथ-साथ फलते-फूलते हैं तथा स्थायीत्व पाते हैं। धर्मनिरपेक्षता व जनतांत्रिक मूल्यों के हासिल ढांचों, परंपरा व विचार पर सुनियोजित हमले होते हैं। इसी समय तारा पांचाल 'फोटो में बच्चा' व 'मैं मंदिर के गर्भग्रह से बोल रहा हूं' लिखते हैं। ये कहानियां बौद्धिक तबकों में धर्मनिरपेक्षता तथा जनतंत्र के पक्ष में ऐतिहासिक साक्ष्यों व तर्कों को उधार लेकर नहीं लिखी गई हैं। तारा पांचाल की रचनाओं का ये पक्ष काफी महत्वपूर्ण है कि वे वैचारिक निष्कर्षों को लेखन के 'केंद्र' में ही नहीं रखते, बल्कि जीवन की ठोस सच्चाई का जनपक्षीय प्रतिबद्धता के साथ 'अन्वेषण' करते हैं। 'फोटो में बच्चा' उपभोक्तावाद एवं मीडिया द्वारा निर्मित यथार्थ की यान्त्रिकता को मानवीय संवेदनशीलता, सामाजिक जिम्मेदारी व आलोचनात्मक विवेक के औजारों से तोड़ती है। इस कहानी का कथावाचक एक फोटोग्राफर है-कम्पीटीशन के लिए उपयुक्त बच्चे को फोटो में कैद करने वाला कैमरामैन। लेकिन उसकी अंदरूनी बेचैनी उसे विज्ञापन की फौरी जरूरतों के सामने सरेंडर करने से रोकती है, उसका कैमरा एक जगह टिकता नहीं, पूरे शहर का सर्वे करता है। वह शहर के इन इलाकों में पहुंच जाता है। जो मुख्यधारा मीडिया तथा राजनीतिक सरोकारों के लिए कोई महत्व नहीं रखते। हरियाणा की सामाजिक आर्थिक हालत की तस्वीर लिए ये कहानी सहज ही पाठक को राष्ट्रीय स्तर पर विकास की विडम्बनात्मक सच्चाई तक ले जाती है। 'फोटो में बच्चा'-विज्ञापन की तात्कालिक मांग है, लेकिन तारा पांचाल इब्ने ईशां के 'ये बच्चा किसका बच्चा है' की दिशा में मुड़ जाते हैं। कहानीकार विज्ञापन के बहाने उसके विलोम यानी जीवन के असल सच को स्थापित करते हैं। 'मैं मंदिर के गर्भगृह से बोल रहा हूं'-साम्प्रदायिकता को वैचारिक समस्या की तरह नहीं उठाती। इस कहानी में धर्म, व्यापार, बाजार व तत्ववाद का सहज मिश्रण मंदिर के मुखिया के चिंतन व आचरण में दर्शाया गया है। मंदिर का गर्भगृह-एक अंधेरी सांस्कृतिक सुरंग की तरह जिसमें बलिष्ठता प्राप्त करने का पारंपरिक साजो सामान मौजूद है, लेकिन ये छद्म धर्मतंत्र जितना दोगला-जनविरोधी होता है- इसकी लोकप्रियता उतनी ही बढ़ती है। 'मैं मंदिर के गर्भगृह से बोल रहा हूं'-राजनीतिक फासीवाद को नहीं, साम्प्रदायिक फासीवाद को उसके सहज-स्वाभाविक अवस्था व गत्यात्मकता में चित्रित करती है।

तारा पांचाल के पहले कहानी संग्रह 'गिरा हुआ वोट' के बाद से उनकी अधिकांश कहानियां हिन्दी की राष्ट्रीय पत्रिकाओं जैसे हंस, कथन, बया, पल-प्रतिपल व 'जतन' में निरंतर प्रकाशित हुई हैं। कहानीकार के रूप में उनकी जो पहचान राष्ट्रीय स्तर पर बनी है, वह आकस्मिक नहीं है। तारा पांचाल की नज़र में- यथार्थ को समझने, देखने व अभिव्यक्त करने में गहराई है। 'फूली' व 'मुनादियों के पीछे' दो ऐसी कहानियां हैं, जो प्रेमचंद की परंपरा से वाकिफ हिन्दी पाठक को अपना यथार्थ बोध व्यापक करने के लिए मजबूर करती हैं। इन दोनों रचनाओं में उत्तर भारत के ग्रामीण-कस्बाई जीवन का गहरा अन्वेषण है। तारा पांचाल की अन्य कहानियों की तरह इनमें भी एक हद हरियाणा का समाज केंद्र में है। 'फूली' एक भैंस का नाम है जैसा कि ग्रामीण हरियाणा/हिन्दी क्षेत्र में माथे पर सफेद फूल वाली, गाय या भैंस को अक्सर कहा जाता है। ये दूली और उसके परिवार की मूलभूत जरूरतों से जुड़ी आकांक्षाओं व संभव दुस्वप्नों के बीच गहरे आत्म संघर्ष व जीवट की कथा है। दूली दिहाड़ीदार मजदूर है। वह हर रोज शहर जाता है, मध्यम/उच्च वर्गीय सम्पन्नता उसे कामकाज/मजदूरी देती है। उसकी मां अपने बुढ़ापे का अंतिम दिनों में पैर पसार कर ठीक ठाक खाट पर सोना चाहती है, वह फूली की तरफ इशारा करके मां को आश्वस्त करता है कि इसे बेचकर, वह सब कुछ कर देगा। ये कहानी जटिल मनोवैज्ञानिक धरातल पर चलती है, दूली का सारा परिवार 'फूली' के बारे में ही सोचता है। उनकी इच्छाओं की पूर्ति फूली की बिक्री से बचे आर्थिक आधार पर निर्भर है। लेकिन ये परिवार शहरी, मध्यमवर्गीय, उपभोक्तवाद को पचा चुका मनोवृत्तियों का पुंज नहीं है। दूली के परिवार के सदस्य अलग-अलग मौकों पर फूली के स्वास्थ्य/खैर सुख बारे दुस्वप्न देखते हैं। असुरक्षा महसूस करते हैं- उनमें 'उपयोगितावादी' जीवन दृष्टि का परोक्ष नकार है। पूरी कहानी

सतही तौर पर आर्थिक जरूरतों के बीच 'फूली' को प्रोजेक्ट करती है। लेकिन सभी पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण इस कहानी को सांस्कृतिक धरातल पर ले जाता है- जहां से असमान आर्थिक-सामाजिक विकास के जटिल पक्ष स्वं ही उद्घाटित होने लगते हैं। मूलभूत जरूरतों के लिए पर्याप्त आर्थिक संसाधन जुटाने में लगे दुली व परिवार के अन्य सदस्यों 'फूली' के जरिए एक अमूर्त बंधन में बंधे हैं। 'फूली' की उपस्थित उनकी इच्छाओं को बल देती है और उसकी 'अनुपस्थिति' का ख्याल उनके इन्सानी वजूद को हिला कर रख देता है। 'फूली' में असमानता पर आधारित विकास के बारे में जो सवाल पाठक के मन में उठते हैं, उनका जवाब 'मुनादियों के पीछे' में दिया गया है। ये कहानी एक तरह का ऐतिहासिक दस्तावेज है। तारा पांचाल ने 'मुनादियों के पीछे' में एक ऐसे केंद्रीय पात्र को दिखाया है, जिसको सामान्यत: समाज के द्वारा इन्सानी वजूद व पहचान से ही वंचित रखा जाता है। ये कहानी 1947 में मिली आजादी को एक विलक्षण लेकिन तारतम्यहीन प्रेमकथा के रूप में प्रस्तुत करती है। इस प्रेमकथा के लेखक वो सामान्य जन हैं, जो अभिव्यक्ति व पहचान के लिए संघर्षरत हैं।

हिन्दी कहानी लेखन में तारा पांचाल का महत्व व स्थान बिल्कुल अलग कहा जा सकता है। इक्कीसवीं सदी को मध्यमवर्ग की सदी कहा जा रहा है। विचार व इतिहास के अंत के तर्क बहुराष्ट्रीय पूंजीवाद ने गढ़ लिए हैं। हिन्दी साहित्य में भी लेखकों का बड़ा तबका है, जो काफी प्रभावशाली है। जिसने लेखन के केंद्र में मध्यम वर्ग या उससे भी ऊपर के वर्ग की जीवन स्थितियों को ही एकमात्र सच्चाई दिखाना शुरू कर दिया है। तारा पांचाल इस छद्म विमर्श व यथार्थ को नकारते हुए हिन्दी कहानी को प्रेम चन्द की परंपरा में पुन: स्थापित करते हैं। स्त्री व दलित विमर्श के दौर में तारा पांचाल एक संजीदा कहानीकार है, जिन्हें विमर्शों के नयेपन के दबाव में पैंतरेबाजी की जरूरत नहीं है। उनकी लेखकीय नजर से किसी भी तरह का उत्पीड़न व उसके प्रतिरोध की संभावनाएं गायब नहीं हैं।

सम्पर्क : अंग्रेजी विभाग, आरकेएसडी कालेज कैथल, मो. 9416383294

चेतना का रचनाकार

◻ रविंद्र गासो

हरियाणा में लिखे जाने वाला साहित्य राष्ट्रीय विमर्शों में कम ही शामिल रहा। इसके कारण, कमियां या उपेक्षा अलग चर्चा का विषय है। इस सब में हरियाणा की रचनाधर्मिता का माकूल जवाब देने में तारा पांचाल का अकेला नाम ही काफी है। बेशक और ज्यादा नाम नहीं हैं। कई पक्ष-कारण हैं। तारा की कहानियों में हरियाणा की संस्कृति कोई विषय नहीं, बल्कि उनके यथार्थ चित्रण में ही इसके वास्तविक रंगों की पहचान है। वस्तुपरकता और ईमानदार आलोचकीय दृष्टिकोण के कारण जन-जीवन के विश्वसनीय चित्र उनकी कहानियों में मिलते हैं।

बड़ी बात यह कि तारा ने शिल्पकार, किसान, मजदूर के जीवन को अपने जिगर का हिस्सा बनाकर लिखा। हालांकि यह ऐसा काम है जिसे लुहार की भट्ठी में तपना-गलना कहा जाता है। तारा खुद लोहार का बेटा था। शिल्पकारों के सामने जो महासंकट आए, बर्बादियों और पीड़ा के अमिट निशान छोड़ गए। पुराने कारोबार खत्म हो गए, नए बने नहीं। रोजी-रोटी के साथ सांस्कृतिक संकट के बड़े प्रश्न तारा के लिए मुंह बाए खड़े रहे। किसान और मजदूर की भी यही स्थिति है। थकती-हारती-लड़ती विशाल श्रमिक जनता का लेखक तारा दलित लेखन की परिभाषा का आगामी पृष्ठ है। यह वह जनवादी दिशा है जो जातीय पहचानों से आगे बढ़ वर्गीय मोर्चे पर जन-मुक्ति का परचम लेकर चलती है।

श्रमिकों का लेखक तारा पांचाल जानता था कि मध्य वर्ग को झंझोड़े बिना विशाल नवजागरण का गीत अधूरा रहेगा। आत्मकेंद्रित व आत्म-मुग्ध भारतीय मध्य वर्ग सांस्कृतिक रूपांतरण के तमाम आंदोलनों से कन्नी काट रहा है। श्रमिक जन से वह खास दूरी से बात करता है। तारा पांचाल बातचीत में अनेक बार इसकी चर्चा करते। वे इस वर्ग के आकार-प्रकार को खारिज करने के पक्ष में नहीं थे। निम्न मध्यवर्ग पर उन्होंने काफी लिखा। मध्यवर्गीय जीवन की विडंबना, कमजोरियों, चिंताओं को वे कुछ अलग से बड़े सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लिख रहे हैं। मुख्य विमर्शों, राजनीतिक चेतना, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर तारा की कलम कभी बंद नही हुई। लेकिन मूल चेतना में गरीब मजदूर-किसान-कारीगर ही रहे। यही जन जब विस्थापित हो शहर में जीवन-संघर्षों में जूझता है, तो तारा खुद के जीवन की तरह उसे अपने खूने-जिगर में शामिल करते हैं। तारा के लेखन का केंद्रीय सार ही देश की विशाल मेहनतकश गरीब जनता के आर्थिक-सामाजिक संकट और सांस्कृतिक व जहनी-गुलामी के कठोर यथार्थ में से मुक्ति-चेतना के रंग ढूंढता है। ये रंग बने-बनाये, कृत्रिम या जीभ के स्वाद की भांति ऊपरी-ऊपरी नहीं, बल्कि गुंथी-मथी मिट्टी के घोल से बने हैं-बिल्कुल मिट्टी रंगे। ये रंग तारा के अपने रंग हैं। मिट्टी से मिट्टी होते मजदूर-किसान के खालिस लौहतत्व मिले रंग।

तारा कई-कई दिनों तक एक कहानी पर काम करते, कभी तो महीनों लग जाते। जब संतुष्ट होते तो पत्रिका में भेजते। एक कहानी उनके लिए बड़े प्रोजेक्ट की तरह होती थी। 'मुनादियों के पीछे', 'फोटो बच्चा', 'झूठे', 'फूली', 'मैं मंदिर के गर्भ-गृह से बोल रहा हूं', 'दीक्षा', 'निर्माता', 'गिरा हुआ वोट', 'निक्कल', 'कलगी', 'दरअसल', 'मास्टर जी', 'रामदेव का घर', 'संभावनाएं', 'गुरु जी के पांव', 'खाली लौटते हुए', 'पीपल', 'बिल्ली' आदि दर्जनों कहानियों, पर विस्तार से लिखने की जरूरत है। लेकिन यहां दो कहानियों

की ही चर्चा करेंगे 'निर्माता' और 'दीक्षा'।

'निर्माता' कहानी 'नया पथ' (अप्रैल 1989 ई.) में छपी थी। बाद में 1991 में तारा के कहानी संगह 'गिरा हुआ वोट' में आई। इस कहानी में प्रीतम लोहार की जीवन-स्थितियों का वर्णन है। श्रमिकों, किसानों, शिल्पकारों का ब्राह्माणीकरण कैसे होता है - इसकी सच्चाई को इसमें खूबसूरती के साथ दिखाया है। प्रीतम लोहार को विधायक, साबुनवाला तथा अमोलक पंडित पांचाल ब्राह्मण सभा बनाने के लिए प्रेरित करते हैं। तीनों के अपने-अपने करैक्टर हैं और वर्ग एक है। ये सत्ताधारी वर्ग हैं। इनकी राजनीति के पास जनता की रोजी-रोटी आदि की बुनियादी समस्याओं का कोई हल नहीं। आम जन चेतन व संगठित न हो पाए इसीलिए सत्ताधारी उन्हें कृत्रिम, झूठी व विकृत पौराणिक जाति के झूठे गौरव में डूबो कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं।

दूसरी कहानी है- 'दीक्षा'। जीवन में, समाज में सुंदर व्यवस्था बनाने में किस तरह परंपरागत दर्शन अपर्याप्त ही नहीं, बल्कि दरिद्र है, धार्मिक-सांस्कृतिक संदर्भों में यह कहानी इसी पर बात कहती है। संसार को 'मोह माया' व 'झूठ' मानने वाला दर्शन खुद कितना झूठा है। इसी दर्शन के गलबे के कारण महंत शिवोनाथ जिंदगी की दुश्वारियों से भाग कर 'बाबा' बनता है। इन्सानी जीवन के खूबसूरत जज्बातों की निंदा की जाती है। मुक्ति (मोक्ष) का दर्शन असल में सामाजिक गुलामी का दर्शन है। महंत शिवोनाथ नवनाथ बनने जा रहे युवक कर्मेंदर को इस दलदल से निकल भागने के लिए कहता है अर्थात्, मोह-माया की फिलॉसफी मेहनतकश के काम की नहीं। समाज में रहते हुए स्थितियों को बदलने का संघर्ष करते हुए जीना है। परिवर्तन के रास्ते और दर्शन खोजने हैं। कोई दूसरा रास्ता नहीं। जादू की पुड़िया या आसान हल नहीं है।

तारा कोई आदर्शवादी लेखक नहीं थे। यथार्थवादी लेखक पूरी तीखी चेतना के साथ जिंदगी के सवालों पर सोच-लिख रहा था। तारा जी का जीवन द्वंद्वों और संघर्षों का दूसरा नाम था। बीमारियों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। माईग्रेन की बीमारी से सालों तक परेशान रहे। आर्थिक तंगी व लाणेदारी का बोझ भी एक बीमारी ही था। इस सब के बावजूद उन्होंने विचार और सृजन के महत्वपूर्ण अध्याय लिखे। हरियाणा के साहित्यिक विमर्शों के वे केंद्रीय व्यक्तित्व थे। अनेक रचनाकार उनसे ऊर्जा, प्रेरणा व दिशा लेकर बड़े हुए। बहुतों को उन्होंने लिखना सिखाया।

सम्पर्क : हिंदी-विभाग,
डी ए वी कालेज, पुण्डरी, मो.- ***9416110679***

•

मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परामुखपेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदु:ख-कातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है। मैं अनुभव करता हूं कि हम लोग एक कठिन समय के भीतर से गुजर रहे हैं। आज नाना भांति के संकीर्ण स्वार्थो ने मनुष्य को कुछ ऐसा अंधा बना दिया है कि जाति-धर्म-निर्विशेष मनुष्य के हित की बात सोचना असंभव-सा हो गया है। ऐसा लग रहा है कि किसी विकट दुर्भाग्य के इंगित पर दलगत स्वार्थ के प्रेम ने मनुष्यता को दबोच लिया है। दुनिया छोटे-छोटे संकीर्ण स्वार्थो के आधार पर अनेक दलों में विभक्त हो गई है। अपने दल के बाहर का आदमी संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। उसके रोने-गाने तक पर सद्उद्देश्य का आरोप किया जाता है। उसके तप और सत्य-निष्ठा का मजाक उड़ाया जाता है। उसके प्रत्येक त्याग और बलिदान के कार्य में भी 'चाल' का संधान पाया जाता है और अपने-अपने दलों में ऐसा करनेवाला सफल नेता भी मान लिया जाता हैं, परंतु मेरा विश्वास है कि ऐसा करनेवाले आदमी सबसे पहले अपना ही अहित करता है। बड़े-बड़े राष्ट्रनायक जब अपनी विराट अनुचरवाहिनी के साथ इस प्रकार का गंदा प्रचार करते हैं, तो ऊपर-ऊपर से चाहे जितनी भी सफलता उनके पक्ष में आती हुई क्यों न दिखाई दे, इतिहास-विधाता का निष्ठुर नियम-प्रवाह भीतर-ही-भीतर उनके स्वार्थो का उन्मूलन करता रहता है। इतिहास शक्तिशाली व्यक्तियों और राष्ट्रों की चिताभूमि को कुचलता हुआ आगे बढ़ रहा है, फिर भी गंदे तरीके सुधारे नहीं गये हैं, बल्कि उनको और भी कौशलपूर्ण और प्रभावशाली बनाया जाता रहा है। जो लोग द्रष्टा हैं, वे इस गलती को समझते हैं,पर उनकी बात मदमत्त व्यक्तियों की ऊंची गद्दियों तक नहीं पहुंच पाती। संसार में अच्छी बात कहनेवालों की कमी नहीं है, परंतु मनुष्य के सामाजिक संगठन में ही कहीं कुछ ऐसा बड़ा दोष रह गया है, जो मनुष्य को अच्छी बात सुनने और समझने से रोक रहा है। इसीलिए आज की सबसे बड़ी समस्या यह नहीं है कि अच्छी बात कैसे कही जाय,बल्कि यह है कि अच्छी बात को सुनने और मानने के लिए मनुष्य को कैसे तैयार किया जाय।

--हजारी प्रसाद द्विवेदी

मुलाकात 'डरी हुई लड़की' से...

□ नवरत्न पांडे

भारतीय ज्ञानपीठ का लोकोदय ग्रंथमाला के तहत ज्ञान प्रकाश विवेक द्वारा लिखित एक उपन्यास आया है 'डरी हुई लड़की'। उपन्यास ठीक ऐसे समय पर आया है जब अखबारी और मीडिया जगत की सुर्खियां पढ कर संज्ञान में आई घटनाओं के मद्देनजर.... लगता है कि यह उपन्यास जरूरी था और एक संवेदनशील पाठक की हैसियत से नेट -शेल में कहूं तो अगर आप बहुत दिन से एकांत में रोये नहीं है अथवा जिंदगी की जद्दोजहद में अपने रोने को मिस कर रहे हैं तो 'डरी हुई लड़की' पढिये। यह भाषाई कौशल का एक शानदार दस्तावेज है।

.....वह लाचार है बेबस है ...उसकी अस्मिता खंडित हुई है ...उसके भीतर छटपटाहट है ...वह टूटे पंखों की चिड़िया सी है ...जिसे पता है कि भ्रष्ट व्यवस्था के पहाड़ से टकराकर वह अपने प्राण तो दे सकती है ...लेकिन बिगाड़ कुछ भी नहीं सकती। ...तो फिर लेखक का आशय क्या यही है कि हार जाओ और चुप्पी का कंबल ओढ़ कर कहीं निर्जन एकांत का वरण करो और जिल्लत भरी जिंदगी को ढोओ...।' नहीं ....!! ऐसा नहीं है.. डरी हुई लड़की के भीतर सुलगता छटपटाहट का लावा उसके भीतर की बेबसी ... पाठक को झिंझोड़ने में कामयाब हुई है.. जिसे पढ़कर उसके मुंह का स्वाद कसैला हो जाता है और वह उपन्यास बीच में ही बंद करके बाहर खिड़की आसमान पर थूक देता है। पाठक का यह थूकना ही उपन्यासकार की जीत है। जैसे पाठक स्वयं पर अथवा पूरी भ्रष्ट व्यवस्था पर या कि कामुक और लंपट पुरुष समाज पर ही जैसे थूकता है।

उपन्यास की जिल्द हटाते ही उसकी कुछ सतरें... नाम से एक स्वतंत्र पृष्ठ सबसे पहले आकर्षित करता है । मसलन...

हर स्त्री के भीतर एक छावनी होती है।

...अथवा ...यौन हिंसा से गुजरी हुई कोई भी लड़की नहीं चाहती कि उसकी आत्मा के जख्मों पर सवालों की जिद्दी मक्खियां भिनकती फिरें ...। पढ़कर पाठक की रीढ़ तन जाती है और वह कौतूहलवश उपन्यास के दरवाजे से प्रवेश कर जाता है ..लेकिन एक बार कथ्य जब आप को पकड़ता है तो ऐसा .... कि आप चाहकर भी वापस नहीं आ सकते। यही डरी हुई लड़की और राजन के बीच के रसायन का कमाल है ।

ज्ञान प्रकाश विवेक की भाषा एक अजीब सी खामोशी में लिपटी हुई भाषा है। ठीक ग़ज़ल की भाषा ... पढ़ते-पढ़ते

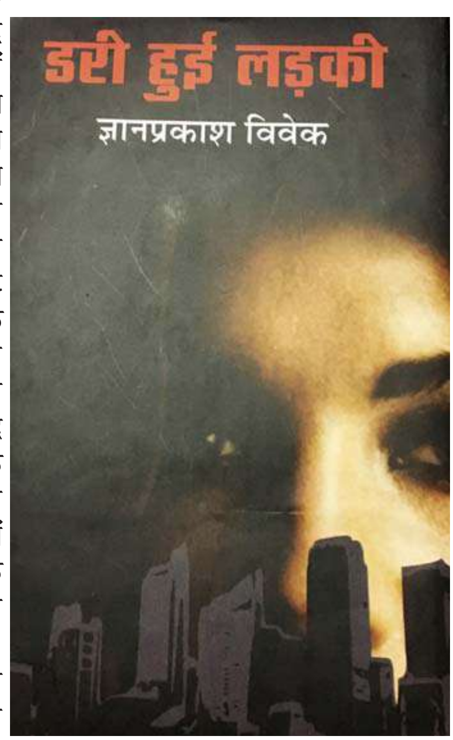

कई बार ऐसा लगता है कि इसकी तनुता, इसकी डेलीकेसी .. कहीं ख़म ना हो जाए .. इसमें बेमतलब का तीखा प्रतिकार भी नहीं है। इसमें एक विवशता है जो बाकायदा पाठक को समाधान निकालने का मौका देती है कि ... बताओ ...अगर ऐसा आपके साथ हो जाए तो आप क्या करेंगे ? और यही एक ख़ालिश अदीब की जदीदियत है। उसकी मैच्योरिटी है। ..और ऐसा शायद संभव हुआ है ज्ञान प्रकाश विवेक लंबे समय से एकांत में रहते हैं और उनका वह एकांत उनकी भाषा में भी उतर आया है। उपन्यास में कथानक लगभग ना के बराबर है और कथानक यहां होता तो व्यर्थ ही लगता है। कथानक होता तो पात्र भी होते और पात्रों की भीड़ कहन के तीखेपन को भोथरा कर देती। नहीं ! .. यहां न तो बेकार की पात्रों की रेलमपेल है और न ही कथानक के नाम पर व्यर्थ की गपौड़बाजी। यहां तो विशुद्ध जेहनी कशमकश है। एक निकोर वस्तुस्थिति और वस्तुस्थिति भाषा की महीन कशीदाकारी से मिलकर एक अलग ही एंगल से फोकस होता है।

उपन्यास का मैं पात्र ..यानी राजन और डरी हुई लड़की यानी नंदिनी ..ये प्रमुख पात्र हैं और गौण पात्रों के नाम पर... राजन का दोस्त जतिन और डॉक्टर फरीदा। गौण पात्र ...यानी जतिन और फरीदा तो बमुश्किल दो एक बार उपस्थित होते हैं। मुख्य बातचीत तो राजन और नंदिनी के बीच ही है। बातचीत भी नहीं बल्कि दोनों प्रमुख पात्र अपने-अपने स्पेस में एक वस्तुस्थिति को जीते हैं ।

उपन्यास में कथ्य के नाम पर तो महज़ इतना कि ...अंधे विकास का ताजा उदाहरण गुड़गांव में लाल बत्ती के पास राजन को खाली जगह में, कूड़े कचरे के उस पार एक लड़की मिलती है ...जिसके साथ दुष्कर्म हुआ है ...और आनन-फानन में राजन उसे घर ले आता है ।

असल में पात्रों की जरूरत उपन्यासकार को तब पड़ती है जब वह कथानक को आगे बढ़ाना चाहता हो। यहां ऐसी कोई दरकार नहीं है। बल्कि कई बार तो ऐसा लगता भी है कि कथानक घूम फिर कर फ्लैट के उसी कमरे में लौट आए जहां नंदिनी अपनी नियति और कशमकश के साथ मौजूद है। लेकिन भले

ही कथानक नहीं है मगर कथा तनाव मौजूद है। उपन्यास पढ़ते हुए पाठक की भावदशा कई बार ऐसी होती है कि वह उपन्यास को बंद कर देता है। क्योंकि प्रमुख पात्र दोनों तनावग्रस्त हैं और यह कथ्य की अपनी विशेषता है कि पाठक झट से पुन शुरू करता है। क्योंकि उसे भरोसा है कि नंदिनी इस वस्तुस्थिति से शायद बाहर आएगी और उसे बाहर आना ही चाहिए। भाषा के माध्यम से उपन्यासकार ने एक ओर जादू किया है कि जब उसे लगता है कि नंदिनी और राजन का वार्तालाप कुछ ज्यादा ही विक्षोभ और गुब्बार से भर गया है तो वह वर्तमान महानगरीय जीवन पद्धति,मीडिया, युवा और फैशन पब, जीवन की एबसर्डिटी का मखौल उड़ाता है।

भाषा का यह करिश्माई खेल कुछ उदाहरणों के रूप में यहां रखा जा सकता है।'मसलन पूरे अपार्टमेंट में बेशुमार लोग रहते हैं। कोई किसी का अंतरंग नहीं। कभी-कभार हेलो जैसा मरगिल्ला सा शब्द उछलता है। अजनबीयत में लिथड़ा हुआ। बस और कुछ भी नहीं। कोई किसी को गौर से नहीं देखता। सब कनखियों से देखते हैं। हम एक दूसरे से बेतकल्लुफ़ नहीं हो पाए। इसलिए न किसी से याराना न फक्कड़पन। ऐसे संबंध। बर्फ की सिल्लियों जैसे ...जो अक्सर फॉर्मेलिटी और तकल्लुफ के कोल्डस्टोरेज में पड़े-पड़े दम तोड़ देते हैं। यहां लोग किसी की प्राइवेसी में दखल नहीं देते। लेकिन संशय के की होल सबके पास हैं। लेखक के पास भाषा तो है ही साथ ही उसके पास एक दृष्टि भी है। जिसके सहारे वह लड़की के उठने बैठने व देखने के अंदाज से उसके भीतर चल रहे तूफान को व्यक्त करता है। जैसे ..'वह सोफे पर बैठी है। सोफे से अपनी पीठ टिकाकर नहीं। थोड़ा आगे होकर। जैसे कि उसे उठकर अभी चल देना हो। उसे कहीं नहीं जाना। लेकिन वह यहां रहना भी नहीं चाहती। रहने और न रहने के बीच की अवस्था किसी कील पर टंगे कैलेंडर जैसी है। फड़फड़ाता हुआ कैलेंडर।'

इसी तरह की स्थितियां निश्चित तौर पर एक अवसाद में लिथड़ा हुआ विक्षोभ पैदा करती हैं। लेकिन लेखक को इससे बाहर निकलना भी बखूबी आता है। वह तुरंत पाठक को थोड़ा खुली हवा में सांस दिलवाता है।

मसलन ऑफिस में भी इसी तरह मुस्कुराते रहते हैं । अच्छा लगता है। हम एक दूसरे की गलतियों पर मुस्कुराते हैं। हमारी गलती पकड़ी जाए तब भी हम मुस्कुराते हैं। दूसरों की गलती पकड़ी जाए तब भी मुस्कुराना।

मुस्कुराना बेहद लाजमी होता है। हम बेशक महान नहीं हो रहे होते। ऑफिसर अपने केबिन में प्रवेश करता है डोर क्लोजर धीरे धीरे दरवाजा बंद कर देता है। तो दुनिया ..एक दुनिया डोर क्लोजर के इस पार ...दूसरी उस पार... हमने अपनी अपनी मुस्काने ...डोरक्लोजरों के विलोम में पैदा की हैं। हम सब जानते हैं कि हमारी मुस्कानों के पेपर वेट के नीचे बिजनेस टाइकून के पेपर फड़फड़ा रहे होते हैं।'

लेखक आज की जिंदगी और युवा की व्यस्तता और उसकी हंसी के पीछे की तकलीफ और झूठी लाइफ स्टाइल पर भी तंज करना नहीं भूलता। जब अपने ऑफिस की एक क्लीग के साथ अपनी शाम को सेलिब्रेट करता है ।

तो यहां उनके गिलासों में वोदका है, कैरीवेली सैक्सोफोन का म्यूजिक भी है और उनके होठों पर मुस्कान भी है लेकिन दिमाग में भय भी है। क्योंकि वे इस माहौल में भी अपने दफ्तर के हंसमुख नौजवान मनीष की आत्महत्या को डिस्कस करते हैं। यह दोहरी जिंदगी की एक मिसाल है। हम सब के सब भौंचक्के रह गए मनीष और आत्महत्या... जो लाइफ को स्ट्रगल कहता था और हमेशा स्ट्रगल करता रहता था। जो पीता और लतीफे सुनाना शुरू करता , जिसके लतीफे सुनकर लड़कियां शरमा जाती थी। दर हकीकत मनीष की आत्महत्या ...एक ऐसे लाइफस्टाइल की आत्महत्या थी जिसमें हम सब थे ।

लेकिन फिर लेखक उसी स्थिति में गुम नहीं हो जाता। उसे अपना लक्ष्य याद है। वह अपना अस्तित्व खोकर टूटने की हद तक छटपटाती डरी हुई लड़की के पास पुन: लौटता है और पाठक को फिर उसी माहौल में ले आता है। उपन्यास का नायक एक गैर शादीशुदा, नौकरीपेशा

इस उपन्यास की कुछ सतरें

- **सर, उस आत्मा को किस डिटर्जेंट पाउडर से धोऊं जो मैली हो चुकी है- डरी हुई लड़की ने कहा है। उसकी समूची देह प्रश्नवाचक हो गयी हो जैसे।**
- **ऐसे शरीर को, जो मुझे प्रतिद्वंद्वी नज़र आता है, उसे अपने साथ रखना कितना कठिन है।**
- **मैं एक ख़स्ताहाल चुप लेकर बैठा हूं, डाक्टर के सामने। क्या बताऊं कि मेरा उद्देश्य क्या है? क्या बताऊं कि मैं क्यों लिये फिर रहा हूं इस लड़की को।**
- **रेप एक तरह का इनह्यूमन एक्शन है। जिसमें हिंसा ही हिंसा होती है। यह एक ऐसा हादसा होता है, जिसकी गवाह वह औरत होती है, जिसके साथ यह घिनौना और अमानीय काम किया जाता है-डाक्टर ने कहा है।**
- **यौन हिंसा से गुज़री कोई भी लड़की नहीं चाहती कि उसकी आत्मा के ज़ख़्मों पर, सवालों की जिद्दी मक्खियां भिनकती रहें।**
- **दुष्कर्म पीड़ित युवती लोगों के लिए किसी पर्यटन स्थल की तरह होती है, जिसे वो देखकर खुश होते हैं।**
- **हर स्त्री के अंदर एक छावनी होती है।**
- **अगर गैजेट्स से डर दूर हो जाता तो संसार की कोई स्त्री डरी हुई नज़र न आती।**
- **हम रिलेशन्स नहीं निभाते, डिस्टेंस निभाते हैं।**
- **स्त्री किसी गुंडे की बात नहीं मानती तो उसके सामने तेज़ाब होता है।**
- **ईश्वर का कोई चेहरा नहीं होता। लेकिन वो जहां होता है, संवेदना का चेहरा लगाकर ही अवतरित होता है।**

युवक है और अपने खामोश सपनों के साथ अपने फ्लैट में अकेला रहता है। खामोशी उसका बाना है। लेकिन उसने अपने जमीर को जिंदा रखा है। यहां तक कि उसे अपनी खामोशी भी अखरती है। उसे खामोशियों के फर्क भी मालूम हैं। फ्लैट के अंदर दो शख्स और दोनों चुप। घर में मैं अकेला होता तो मुझे मेरी चुप न अखरती। मेरी चुप मेरे पैरों में,पैरों की हवाई चप्पलों में या जूतों के तसमों में छुपी रहती है। कई बार तो चुप किसी किताब के भीतर किसी गुमशुदा किस्सागो जैसी... तो कई बार वह चुप लोकल बस की पुरानी टिकट जैसी फर्श पर रेंगती सी। अकेले आदमी के साथ साथ कोई नहीं चल रहा होता उसकी चुप चल रही होती है। वह चुप वीरानी में लिथड़ी हुई होती है। और इस फ्लैट की चुप अजनबीयत के तारकोल में ....अकेले घर में रहने वाले इंसान की चुप दिलकश होती है ...दिल फरेब होती है ... और दिल शिकन भी ...खिड़की के सलाखों पर बैठा चांद किसी डाकघर के डाकीये जैसा लगता है। कमबख्त उसके सारे अंतर्देशीय खामोश प्रार्थनाओं का अनुवाद ही तो होते हैं ।

पूरे उपन्यास में भाषाई कौशल अपनी ग़ज़लियत की खुशबू लिए बिखरा पड़ा है। कई दफा पाठक को लगता है कि वह उपन्यास नहीं कोई लंबी नज़्म पढ़ रहा है। लेखक कहीं-कहीं इतना विनम्र हो गया है कि उसकी विनम्रता के बरक्स पाठक स्वयं को असहाय पाता है। परिणामत: उसे नंदिनी की समस्या अपनी समस्या लगती है। लेखक के खुले मन से अपनी अनभिज्ञता को स्वीकार करता है। मसलन ....'वह यह भी मान लेता है कि ऐसी स्थिति में लड़की को इस मानसिक आघात से कैसे उबारना है उसे नहीं पता। लेकिन इस नहीं पता के पीछे उसकी बहुत बारीक मंशा भी है कि वह पाठक को यह बताने में कामयाब होता है कि इस तरह के मानसिक आघात की स्थिति में लड़की आपके किसी भी संवाद को अथवा किसी भी बातचीत को कैसे लेगी और कैसे रिएक्ट करेगी?

कुछ तय नहीं होता। क्योंकि उसका विश्वास दुनिया से और पुरुष प्रजाति से उठ चुका होता है। दुष्कर्म पीड़ित लड़की की साइकी को समझना और फिर उसको कथावस्तु बनाकर उपन्यास में प्रस्तुत करना कोई आसान काम नहीं। क्योंकि लेखक सिर्फ लेखक ही होता है। कोई मनोवैज्ञानिक अथवा डॉक्टर नहीं। लेकिन लेखक ने जिस तरीके से और जिस सलीके से लड़की का मनोविज्ञान उपन्यास में प्रस्तुत किया है वह चकित तो करता ही है बल्कि उसने कथ्य के साथ पूरा न्याय किया गया है।

लेखक एक स्थान पर अपनी मां और पिताजी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है। यहां उसका आशय कथावस्तु को महज़ खींचना नहीं है बल्कि अपने माता-पिता की चारित्रिक विशेषताओं के माध्यम से ...वह मैं पात्र के चरित्र के साथ पूरा न्याय करता था प्रतीत होता है। साथ ही वह नायक के संपूर्ण व्यक्तित्व को आदर्श बनाकर पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने में कामयाब भी होता है। कई जगह पर तो उसकी व्यवस्था इतनी विनम्र होती है कि पाठक के पास रोने के अलावा कोई चारा नहीं बचता। जैसे एक स्थान पर स्थिति कुछ यूं होती है ...'अभी वह बाथरुम में है। मैंने दलिया दो प्लेटों में रख दिया है। मैं उस की प्रतीक्षा में हूं। मैं जिस लड़की के इंतजार में हूं उसके रूठने मनाने की बात सोच भी नहीं सकता। मैं न मां हूं ...न मैं डॉक्टर हूं ... न मनोचिकित्सक हूं। काश ! होता ..कुछ भी होता है.... कुछ न होता तो कम से कम एक स्त्री ही होता । लेकिन मैं कुछ भी नहीं .... ।

यहां 'कम से कम एक स्त्री होता है' लिखकर उपन्यासकार ने स्त्री को बहुत ऊंचा सम्मान दिया है। यह वाक्य लेखक की नजर में स्त्री के विराट अस्तित्व की पराकाष्ठा है और चरमोत्कर्ष भी।

लेकिन तब तक नन्दिनी राजन के फ्लैट पर एक पत्र छोड़ कर जा चुकी होती है। तो पाठक के दिमाग में फौरन एक बात आती है कि इसका दूसरा पार्ट भी लिखा जाना चाहिए और यह परंपरा अब इस उपन्यास के साथ डाली जानी चाहिए क्योंकि फिल्म का सीक्वल बन सकता है तो 'डरी हुई लड़की' का सीक्वल भी लिखा जाना चाहिए ....ऐसी गुजारिश पाठक इस उपन्यासकार से करता है।

पुस्तक : डरी हुई लड़की

लेखक : ज्ञान प्रकाश विवेक

प्रकाशक :भारतीय ज्ञान पीठ, 2017

सम्पर्क-प्रवक्ता हिंदी, गांव व डा. रावलधी, जिला-चरखी दादरी - 127306 मो.- 9896224471

गीत

बस उड़ती जाँऊ ...

□ राजेश कुमार कश्यप

पंख फैलाऊं और
आसमां में बस उड़ती जाऊं,
बंधन सारे तोड़ दूं, मैं हाथ न आऊं,
मैं उड़ती जाऊं, बस उड़ती जाऊं,
उड़ती जांऊं, बस उड़ती जाऊं ।

पिंजरों में मैं, अब न रहूंगी,
जकड़न भी मैं, अब न सहूंगी
अब न सहूँगी
पिंजरे सारे तोड़ के,
जकड़न सारी तोड़ के,
फुर्रररर हो जाऊं,
बस उड़ती जाऊं.....
बादलों के मैदानों में खेल के आऊं
और इन्द्रधनुष के रंगों में घुलमिल जाँऊ
बस उड़ती जाऊं,.....

डरी-डरी, मैं सहमी-सहमी अब न रहूंगी,
चीखूंगी, चिल्लाऊंगी, अब चुप न रहूंगी,
अब न सहूंगी
डरना अब मैं छोड़ के
चुप्पी अब मैं तोड़ के
थोड़ा गुर्राऊंउउउ,
बस उड़ती जाऊं...
आंधियों-तूफानों से मैं टकराऊं,
मैं न घबराऊं,
और बारिशों की बूंदों में, मैं भीग के आऊं
बस उड़ती जाऊं....

और पंछियों के झुंड में, मैं घुलमिल जाऊं,
बातें करूं हवाओं से , मैं चहचहाऊं,
बस उड़ती जाऊं..
मैं गीत सुनाऊं,
बस उड़ती जाऊं
मैं लहलहाऊं,
बस उड़ती जाऊं,
मैं हाथ न आऊं,
बस उड़ती जाऊं......

सम्पर्क-गांव बाहरी, तहसील थानेसर, जिला कुरुक्षेत्र, मो. 9466436692

इस्मत चुगताई : फुहशनिगार नहीं, हकीकतनिगार

□गुरबख्श सिंह मोंगा

समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में इस्मत चुगताई का नाम किसी तआरूफ का मोहताज नहीं। अपने ही घर में मजहब, मर्यादा, झूठी इज्जत के नाम पर गुलाम बना ली गई, औरत की आजादी पर उन्होंने सख्ती से कलम चलाई और उसके हकीकी हकूक के हक और उसकी हिफाजत में अपनी आवाज बुलंद की। वे सचमुच में एक स्त्रीवादी लेखिका थी। अपने समूचे साहित्य में उन्होंने निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम तबके की औरतों की समस्याओं, उनके सुख-दु:ख, उम्मीद-नाउम्मीद को बड़े ही बेबाकी से अपनी आवाज दी। भारतीय समाज में सदियों से दबी-कुचली और रूढ़ सामाजिक बंधनों से जकड़ी महिलाओं के दर्द को न सिर्फ उन्होंने संजीदगी से समझा, बल्कि उसे अपने साहित्य के माध्यम से लोगों के बीच ले गई। उन्होंने उन मसलों पर भी कलम चलाई, जिन्हें दीगर साहित्यकार छूने से भी डरते और कतराते थे। इस्मत चुगताई के लेखन में धर्मनिरपेक्षता और आधुनिकता का हमेशा जोर रहा। अंधविश्वास, धार्मिक कटरता, साम्प्रदायिकता, सामंती प्रवृतियों, वर्गभेद और जातिभेद का उन्होंने जमकर विरोध किया।

हिंदी, उर्दू अदब की दुनिया में 'इस्मत आपा' के नाम से मशहूर इस्मत चुगताई का जन्म 15 अगस्त,1915 को उतर प्रदेश के बदायूं शहर में हुआ। उन्हें बचपन से ही पढ़ने का बहुत शौक था। इस्मत चुगताई खुद अपने लेखन कला के बारे में कहती थी, ''लिखते हुए मुझे ऐसा लगता है। जैसे पढ़ने वाले मेरे सामने बैठे हैं, उनसे बातें कर रही हूं और वो सुन रहे हैं। कुछ मेरे हमख्याल हैं, कुछ मोतरिज हैं, कुछ मुस्करा रहे हैं, कुछ गुस्सा हो रहे हैं। कुछ का वाकई जी जल रहा है। अब भी मैं लिखती हूं तो यही एहसास छाया रहता है कि बातें कर रहीं हूं''।

इस्मत चुगताई की कई कहानियों पर वामपंथी विचारधारा का असर है। उस दौर के तमाम रचनाकारों की तरह वे भी अपनी कहानियों के जरिए समाजवाद का पैगाम देती हैं। 'कच्चे धागे' 'दो हाथ' और 'अजनबी' उनकी ऐसी ही कहानियां हैं। इस्मत चुगताई इंसान-इंसान के बीच समानता की पक्षधर थी। औरत और मर्द के बीच असमानता देखकर, वह हमलावर हो जाती थी। 'मसावात'' (समानता) का फुकदान (अभाव) अमीर गरीब के मामले में ही नहीं,औरत और मर्द के मुकाबले में तो और भी ज्यादा है।

इस्मत चुगताई अपनी किशोरावस्था से ही आजादख्याल थी। किसी भी खांचे में कैद रहना उन्होंने सीखा नहीं था। लड़का-लड़की में लिंग के आधार पर भेदभाव को वे गलत मानती थी। इस्मत चुगताई के कई कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। जिसमें प्रमुख है।, 'चोटें', 'छुईमुई', 'एक बात', कलियां, 'एक रात', 'दो हाथ', 'दोजखी', 'शैतानी' आदि। वहीं साल 1941 में प्रकाशित 'जिद्दी' उनका पहला उपन्यास था। 'टेढ़ी लकीर' एक कतरा ए खून, दिल की दुनिया, मासूमा, 'बहरूप नगर','सैदाई', 'जंगली कबूतर,''अजीब आदमी,''बांदी' उनके दीगर उपन्यास हैं। 'कागजी है पैरहन' कहने को इस्मत चुगताई की आत्मकथा है, लेकिन एक लिहाज से देखा जाए, तो इस किताब में जगह-जगह स्त्री विमर्श के नुकते बिखरे पड़े हैं। अपनी बातों और विचारों से वे कई जगह पितृसतात्मक मुस्लिम समाज की बखिया उधेड़ती हैं। किताब का हर एक अध्याय, मुकम्मल अफसाना है।

इस्मत चुगताई के पति शहिद लतीफ अपने जमाने के मशहूर फिल्म लेखक और निर्देशक थे। इस्मत चुगताई भी फिल्मों से जुड़ी रहीं। उनकी कई कहानियों पर फिल्में बनीं। इसके अलावा उन्होंने अनेक फिल्मों की पटकथा भी लिखी। फिल्म 'जुगनू' में अभिनय किया। निर्देशक एम एस सथ्यू की मशहूर फिल्म 'गर्म हवा' इस्मत चुगताई की कहानी पर ही बनी थी। जिसके लिये उन्हें सर्वश्रेठ कहानी का फिल्मफेयर अवार्ड भी मिला। 'गर्म हवा कैसे बनी, इसका भी बड़ा दिलचस्प किस्सा है। इस्मत चुगताई की कहानी इस्मत चुगताई को कई सम्मानों से भी नवाजा गया। उन्हें मिले प्रमुख सम्मान हैं-'सहित्य अकादमी पुरस्कार', 'गालिब अवार्ड, 'इकबाल सम्मान', 'मखदूम अवार्ड' आदि।

''मै मुसलमान हूं बुतपरस्ती शिर्क (अल्लाह की जात में किसी को शरीक करना, जो इस्लाम के मुताबिक पाप है। मगर देवमाला (पुराण,माइथलॉजी) मेरे वतन का विरसा (धरोहर) है। इसमें सदियों का कल्चर और फलसफा समोया हुआ है। ईमान अलाहदा है। वतन की तहजीब अलाहदा है। इसमें मेरा बराबर का हिस्सा है। जैसे उसकी मिट्टी, धूप और पानी में मेरा हिस्सा हैं। मैं होली पर रंग खेलूं, दीवाली पर दिये जलाऊं तो क्या मेरा ईमान मुतजलजल (कंपायमान) हो जाएगा। मेरा यकीन और शऊर क्या इतना बोदा है, इतना अधूरा है कि रेजा-रेजा (टुकड़े-टुकड़े) हो जाएगा।''

इस्मत चुगताई को वतन की गंगा-जमुनी तहजीब से बेहद प्यार था। बाज लोगों में दूसरे धर्म को लेकर जो कट्टरता और असहिष्णुता होती है, वह उनमें बिल्कुल नहीं थी। इस्लाम धर्म के अलावा वे सभी धर्मो को पंसद करती थी, वतन की साझा संस्कृति में वे अपनी भी हिस्सेदारी की बात करती थी।''मै मुसलमान हूं बुतपरस्ती शिर्क (अल्लाह की जात में किसी को शरीक करना, जो इस्लाम के मुताबिक पाप है। मगर देवमाला (पुराण,माइथलॉजी) मेरे वतन का विरसा (धरोहर) है। इसमें सदियों का कल्चर और फलसफा समोया हुआ है। ईमान अलाहदा है। वतन की तहजीब अलाहदा है। इसमें मेरा बराबर का हिस्सा है। जैसे उसकी मिट्टी, धूप और पानी में मेरा हिस्सा है। मैं होली पर रंग खेलूं, दीवाली पर दिये जलाऊं तो क्या मेरा ईमान मुतजलजल (कंपायमान) हो जाएगा। मेरा यकीन और शऊर क्या इतना बोदा है, इतना अधूरा है कि रेजा-रेजा (टुकड़े-टुकड़े) हो जाएगा।'' हर दिल अजीज अफसानानिगार इस्मत चुगताई ने 24 अक्तूबर, 1991 को इस दुनिया से विदाई ली। जाते-जाते भी वे दुनिया के सामने एक मिसाल छोड़ गईं। उनकी वसीयत के मुताबिक मुंबई के चंदनबाडी शमशान गृह में उन्हें अग्नि को समर्पित किया गया। एक मुस्लिम औरत का मरने के बाद दफनाए जाने की बजाय हिंदू रीति रिवाजों से दाह संस्कार, सचमुच उनका एक आश्चर्यजनक और साहसिक फैसला था। इस्मत चुगताई के इस फैसले से उनके कुछ तरक्कीपसंद साथी नाराज भी हुए। लेकिन चुगताई अलग मिट्टी की बनी हुई थी, न तो वे अपने जीते जी कभी लीक पर चली और ना ही मरने के बाद। इस्मत चुगताई की शानदार शख्सियत के बारे में मंटो ने क्या खूब कहा है।''इस्मत पर बहुत कुछ कहा गया है और कहा जाता रहेगा। कोई उसे पसंद करेगा, कोई नापसंद। लेकिन लोगों की पसंदगी और नापसंदगी से ज्यादा अहम चीज इस्मत की तख्लीकी कुव्वत है। बुरी, भली,उरियां,मस्तूर जैसी भी है, काइम रहनी चाहिए। अदब का कोई जुगराफिया नहीं। उसे नक्शों और खाकों की कैद से, जहां तक मुमकिन हो, बचाना चाहिए। •

सम्पर्क - 99966-84988

थर्डजेंडर की स्थिति में बदलाव की जरुरत

□ सपना

हमारे समाज में जहां एक ओर स्त्री और पुरुष के अस्तित्व को सहज रूप से स्वीकारा जाता है। वहीं दूसरी ओर 'तीसरा-लिंग' जो न तो स्त्री है और न ही पुरुष अर्थात् अलिंगी होते हैं, उन्हें लोगों द्वारा ऐसा देखा जाता है, जैसे वे दूसरी दुनिया से आए एलियन हो। उन्हें लोगों द्वारा हिजड़ा, किन्नर, खुसरा, छक्का आदि नामों से संबोधित किया जाता है। समाज में शारीरिक रूप से अंपग व्यक्ति के अस्तित्व को तो लोग स्वीकार करते हैं उसके प्रति सहानुभूति भी दिखाते और हैं। यह भी तो हमारे ही तरह मनुष्य हैं तो समाज के लोगों द्वारा ऐसा दुर्व्यवहार क्यों? क्यों ये लोग शादी, बच्चे के पैदा होने पर, बसों ट्रेनों, सड़कों इत्यादि जगहों पर पैसे मागने को मजबूर हैं?

लोगों में इनके अस्तित्व को लेकर वास्तविकता कम और अफवाहें अधिक प्रचलित हैं। इनके बारे में कहा जाता है कि अगर ये किसी को दुआ दे तो वह अवश्य ही पूरी हो जाती है इसके विपरीत बद्दुआ दे तो उस परिवार का विनाश ही विनाश हो जाता है। लोग इनकी दुआएं तो चाहते हैं पर उनके अस्तित्व को स्वीकार करने की हिम्मत उनमें नहीं हैं।

भारतीय इतिहास में पौराणिक काल से लेकर महाभारत, मुस्लिम शासन काल में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। किन्नरों को स्त्री या पुरुष से अलग 'तीसरे लिंग' की पहचान देकर सुप्रीम कोर्ट ने इन लोगों को एक नई उम्मीद दी है। 15 अप्रैल 2014 में उच्चतम न्यायालय द्वारा इन्हें 'थर्डजेंडर' के रूप में कानूनी मान्यता दी गई। अब यह लोग अपने आप को स्त्री या पुरुष कहने को विवश नहीं हैं। इससे पहले इन्हें इस विवशता से गुजरना पड़ता था। सवा सौ करोड़ की जनसंख्या वाले भारत देश में इनकी जनसंख्या लाखों में ही है। सामाजिक व आर्थिक तौर पर ये असुरक्षित और निस्सहाय होते हैं। इनके अपने भी इन्हें अपनाने से कतराते हैं और इन्हें दर-दर की ठोकरे खाने के लिए छोड़ दिया जाता है। इनमें से कुछ तो समृद्ध घरों से होते हैं फिर भी इन्हें नारकीय जीवन व्यतीत करने को मजबूर होना पड़ता है। समाज के साथ सरकारें हैं इनको मौलिक आवश्यकताएं तथा अधिकार तक प्रदान नहीं कर पाते हैं।

बदलते समय के साथ किन्नर समाज के प्रति अब देश और समाज का नज़रिया इनको लेकर बदल रहा है। भारत सरकार की पहल पर किन्नर समुदाय को मुख्यधारा में लाने के लिए मतदान का अधिकार देने के बाद शिक्षित करने के लिए भी प्रयास शुरू हो गए हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय और जामिया मिलिया विश्वविद्यालय में वर्ष 2015 से आवेदन पत्रों में 'थर्डजेंडर' की कैटेगरी को जगह मिली थी।

इस साल दिल्ली विश्वविद्यालय में कुल 83 ने थर्डजेंडर आवेदन किया। इसी साल जून महीने में इग्नू ने सभी पाठ्यक्रमों में फीस की पूरी छूट की घोषणा की थी। किन्नर समुदाय पूरे देश में कहीं भी इग्नू की किसी भी शाखा में प्रवेश ले सकते हैं। इस तरह न केवल किन्नर अब शिक्षित होंगे बल्कि उनके प्रति समाज का नजरिया भी बदलेगा। शिक्षा के द्वारा किन्नर समुदाय के बच्चें भी मुख्यधारा से जुड़कर सामान्य जीवन यापन कर पायेंगे। इनका मानसिक एवम् शैक्षणिक स्तर सुधरेगा और यह भी समाज में सर उठा कर जी पाएंगे। इग्नू ने इनके लिए बहुत अच्छा कदम उठाया है क्योंकि जैसा हम सब जानते हैं कि 'थर्डजेंडर' आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं। इनके लिए रोज कक्षा में जाना मुश्किल होता है क्योंकि उनके लिए रहने की सबसे बड़ी समस्या रहती है। इग्नू के इस कदम से अब हजारों 'थर्डजेंडर' बिना किसी खर्च के अपने घर में रहकर आगे की

पढ़ाई कर सकेंगे। इग्नू के बाद अब जामिया मिलिया इस्लामिया ने भी पहल करते हुए 'थर्डजेंडर' को मुफ्त शिक्षा देने की घोषणा कर दी है। इसके लिए 31 जुलाई 2017 से आवेदन शुरू हो गए हैं और अंतिम तारीख 16 अक्टूबर रखी गई है। निश्चित तौर पर यह फैसला 'थर्डजेंडर' छात्रों को उच्च शिक्षा के प्रति प्रेरित करने के लिए ही लिया गया है।

किन्नर समाज आज अपनी समस्याओं को लेकर चिंतित भी और प्रयासरत भी। इसका जीता-जागता उदाहरण पंजाब विश्वविद्यालय में देखने को मिलता है। यहां 'थर्डजेंडर' धनंजय ने अपने लम्बे समय से प्रयास के कारण ही आज कुछ 'थर्डजेंडर' छात्रों को विभिन्न कोर्सो में प्रवेश दिलाया हैं। यह आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण खुद शिक्षा के खर्चे को नहीं उठा पाते और उन्हें सरकारी या गैर-सरकारी एजेंसियों के आगे हाथ फैलाने पड़ते हैं।

'थर्डजेंडर' को लेकर हिन्दी साहित्य में अभी तक कम ही लेखन हुआ है। फिर भी इनको लेकर जितना साहित्य रचा गया हैं, उसने हमारे सोचने के दृष्टिकोण को ही बदल कर रख दिया है। हिन्दी साहित्य में महेंद्र भीष्म द्वारा लिखित 'किन्नर कथा', नीरजा माधव का 'यमदीप', निर्मला भुराड़िया का 'गुलाम मंडी' और चित्रा मुदगल का 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' आदि उपन्यास किन्नर समाज के यथार्थ को चित्रित करते है। अब तक जिस विषय को शर्म का विषय समझा जाता रहा है, उस पर लेखनी चलाना सचमुच अपने आप में साहस की बात हैं।

'किन्नर कथा' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने किन्नरों के जीवन की पीड़ा का यथार्थ चित्रण किया है। किन्नर अपने ही परिवार और समाज के कारण हमेशा से दु:ख झेलता रहा है। इस उपन्यास में राजघराने में चंदा का जन्म होता है। पिता को जब उसके 'किन्नर' होने का पता चलता है तो वह ही अपनी बेटी को जान से मारने का प्रयास करता है क्योंकि वह नहीं चाहता कि बेटी के कारण वंश पर कोई कलंक न रहे।

'यमदीप' उपन्यास में किन्नरों को समाज की मुख्यधारा से जोड़कर बुनियादी हक देने का पूरा प्रयास किया गया हैं। यदि ऐसे बच्चे को माता-पिता स्वीकार भी करते हैं तो हमारा समाज उसे स्वीकार नहीं करने देता। नंदरानी के माता-पिता उसे अपने पास रखना चाहते हैं और पढ़ा-लिखाकर अपने पैरों पर खड़ा करना चाहते है, पर हमारा समाज करने दे तब तो करे न? उसे इनकी समस्याओं से क्या लेना है? यह तो बस परम्पराओं के नाम पर शोषण करना जानती हैं।

'गुलाम मंडी' उपन्यास में निर्मला भुराड़िया ने तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाने वाले किन्नरों की समस्या और मानव तस्करी का भयावह चेहरा पाठकों के सामने रखा है। किन्नरों की पीड़ा की कुशल अभिव्यक्ति इनके उपन्यास में देखने को मिलता है। इस उपन्यास में सच को बड़ी ही बारीकी से सामने लाने का प्रयास किया गया है। जिसे आज तक बार-बार दबाने की कोशिश हमारे समाज द्वारा किया गया है।

चित्रा मुदगल द्वारा लिखत उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा' अभी हाल में ही प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में किन्नरों की पीड़ा, दु:ख-दर्द और त्रासद जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में विनोद उर्फ़ बिन्नी को किन्नर होने का वीभत्स पीड़ा झेलते हुए दिखाया गया है। जब हिजड़ा समुदाय को उसके किन्नर होने का पता चलता है तो वो उसे लेने आ जाते हैं, तब उन्हें उसके छोटे भाई को दिखाकर बचाया जाता है। लेकिन बाद में उसकी पहचान तक मिटा दिया जाता है।

इन चारों उपन्यासों में दिखाया गया है कि एक किन्नर होने का दर्द क्या होता है। इन्हें समाज में किस तिरस्कृत दृष्टि से देखा जाता है। लोग इन्हें अपने आस-पास तक देखना तक नहीं चाहते। ऐसे में इनका विकास कैसे हो सकता है, फिर चाहे सरकार द्वारा इनके लिए नए-नए योजनाएं ही क्यों न बनाए जा रहे हो, जब तक इनको लेकर समाज का नजरिया नहीं बदलेगा तब तक इनका विकास पूरी तरह से नहीं हो पाएगा। आज भी क्यों यह समाज अपने सम्मान और अधिकारों की मांग के लिए झोली फैलाए खड़ा हैं, इसलिए आज हमें अपने नजरिये को बदलने की जरूरत है। •

सम्पर्क- शोधार्थी, हिंदी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, मो. 2683867

लोक कथा

डपोरशंख

किसी आदमी ने एक देवता की बड़ी तपस्या करके एक ऐसा शंख पाया कि उससे जो मांगिए, मिलता। किसी को इसका पता चल गया और वह उसे उड़ाने के फिराक में लगा रहा। मौका पाकर उसने शंख चुरा लिया। शंखवाला अपने देवता के पास फिर पहुंचा और उसे अपना दु:ख सुनाया। देवता ने कहा, 'अच्छा, मैं तुम्हें एक दूसरा शंख देता हूं, पर यह डपोरशंख है। तुम सौ मांगोगे, तो यह कहेगा कि दो सौ लो, पर देगा टका भी नहीं।'

'तो मैं ऐसे शंख को लेकर क्या करूंगा?'

'क्या करोगे? जिस आदमी नले तुम्हारा यह शंख चुराया है, उसी के सामने इस शंख से, जितना चाहो, मांगना। यह उसका दूना देने की बात करेगा। बस, वह आदमी तुम्हारी नजर बचाकर यह शंख ले लेगा और पहला शंख इसकी जगह पर रख देगा। तुम वह शंख लेकर वहां से तुरंत अपने घर चले जाना और आगे उसे संभाल कर रखना।'

उसने यही किया। पहले चोर ने इसकी नजर बचाकर वह शंख रख दिया और यह उठा लिया। यह अपना शंख लेकर चलता बना। दूसरे दिन जब चोर ने डपोरशंख से कहा, 'ला, सौ रुपए', तो वह बोला, 'ले दो सौ।' कह तो दिया, पर डपोरशंख के पास देने को क्या रखा था? जब उसने कहा, 'रुपए दे दो सौ', तो शंख बोला, 'अहं डपोरशंखास्मि, बदामि च ददामि न।' (मैं तो डपोरशंख हूं। कहता हूं देता नहीं।) जो बढ़-चढ़कर बातें करते हैं, पर कुछ करते न हीं, उन्हें लोग डपोरशंख कहते हैं।

गिलहरी का विवाह

□ बालमुकुन्द गुप्त

गिलहरी के विवाह की धूम है। गिलहरी के स्वजन लोग महफिल जमाये बैठे हैं। कितने ही लोगों को न्यौता भेजा है। सबकी प्रसन्नता के लिए गाना बजाना होगा। मित्र मंडली के जमाव और गाने बजाने के सरंजाम के लिए बन्दर नियत हुआ। बंदर ढोलकी गले में डालकर न्यौता देने गया। सबसे पहले पुरोहित शिवराम पांडे के मकान पर जाकर न्यौता देने लगा।

ढमढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज।
आसन पोथी लेके चलिए पांडे जी महाराज।।

पीछे भालू के घर जाकर कहा–
ढमढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज।
आप भी चलिये खंजरी लेके भालू जी महाराज।।

पीछे बकरे के घर जाकर कहा–
ढमढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज।
चलके आप मृदंग बजायें बकरा जी महाराज

पीछे बिल्ली के घर जाकर कहा–
ढमढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज।
बिल्लीजी चलिए लेके अपना सारंगी साज।।

पीछे कुत्ते के घर जाकर कहा–
ढमाढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज।
तंबूरा लेके चलिये श्री कुत्ता जी महाराज।।

इस प्रकार न्यौता हो जाने के बाद खूब महफिल जमी। पुरोहित शिवराम पांडे वर कन्या को लेकर विवाह कराने बैठे।

उधर गाने का तार जमा, बाजा बजने लगा–
बकरे का मृदंग बाजे तितांग् तितांग्।
कुत्ते का तंबूरा बाजे हियांग् हियांग्।।
पींपीं चींचीं चींचीं बाजे बिल्ली का सारंग्।
भालू की खंजरी करे खटंग् खटंग्।।
गधे का सितार बाजे झींझीझींझींझीं।
हरिन का चौतारा बाजे चींचींचींचींचीं।।

कुत्ते का तंबूरा देखो, गधे का सितार।
हरिन का चौतारा देखो अजब बहार।।

'गिलहरी का विवाह' कविता संबंधी

एक दिलचस्प विवाद

बालमुकुन्द गुप्त जी ने 'रसिकलाल दत्त' के नाम से बच्चों के लिए 'खिलौना' नामक सचित्र पुस्तक प्रकाशित की थी। यह हिंदी में पहली सचित्र पुस्तक थी। इसमें संकलित 'गिलहरी का विवाह' कविता उत्तर प्रदेश सरकार ने अपनी 'शिक्षावली' नामक एक पाठ्य पुस्तक में शामिल कर ली थी।

''आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने अपनी पत्रिका सरस्वती में इसे लचर बता दिया। उनका तर्क था कि देखिए कवि ने कैसा गजब किया है–'एक चरण में 26 और 28 मात्रा जड़ दी हैं' :

द्विवेद्वीजी ने आगे कहा

ढम–ढमाढम के पहले 'ढ' को दीर्घ और महाराज के 'हा' को ह्रस्व करने से क्या छन्द की शोभा क्षीण हो जाती?

गुप्तजी की कविता में द्विवेदीजी ने जो दोष दिखाए थे उनकी चर्चा की। यह चर्चा भी बेहद दिलचस्प और काम की है–देखिए :

'खिलौने' लिखने वाले ने बच्चों के पढ़ने के लिए 'गिलहरी का विवाह' लिखा। बच्चों की कविता और बन्दर का ढोल जी में आया जैसे बजाया और मनमानी तान तोड़ी।...द्विवेदी जी को यह विचारना चाहिए था कि बनाने वाला निरा मूर्ख ही न होगा। बच्चों के लिए कविता बनाई है उसमें एक आध मात्रा टूट जाए तो कौन बड़ी बात है? घर की दाई या दादी, नानी के समय की कोई कहानी, द्विवेदीजी को अवश्य याद होगी–'कहां की बुढ़िया, कहां का तू, चल मेरे रहटा चहरक चूं' की मात्रा गिन तो डालिये और जरा 'तू' और 'चूं' का काफिया भी तो देखिये। आप तो अंग्रेजी के पंडित हैं, बच्चों की प्रकृति को पहचानते हैं, फिर क्या आप नहीं जानते कि खिलौने वाले ने बच्चों की तबीयत का ख्याल रखकर उनके Rhymes को उनके मिजाज के माफिक रखा है। एक जगह उसी 'खिलौना' पोथी में आंख के साथ फांक का काफिया बांधा गया, तो क्या 'खिलौना' बनाने वाला इतना मूर्ख है कि उसे क–ख की भी खबर नहीं? परन्तु जो जरा भी समझ के देखेगा, तो समझ जावेगा कि माता बच्चे को गोद में लिये लोरी दे रही है, किसी कवि की जोरु नहीं है, उस बच्चे की माता है। इसी से अल्ल–बल्ल उसके जो जी में आता है, सो कहती है।

द्विवेदीजी ने अपने आलोचना–लेख में यह भी लिख दिया था कि पाठ्य पुस्तक (शिक्षावली) में गुप्तजी की उक्त कविता को डालने वाले को उसे थोड़ा शुद्ध कर देना चाहिए था। उसका उत्तर जो गुप्तजी ने दिया वह भी बहुत ऊंचा और उत्तम है:

द्विवेदीजी बतावें, कबीर की पोथी में से, दादू की पोथी में से, नानक की पोथी में से यदि कोई कुछ संग्रह करे, तो उसको, उसके संशोधन का क्या अधिकार है? कबीर कहते हैं :

अलख–पलक में खप गया, निरंजन गया बिलाय।
अवगत भजूं तो गत नहीं, भजूं कौन सो लाय।।
थकत–थकत जग थाकिया, थाका सबही खलक।
देखत नजर न आइयास, हार कहा अलख।।

अब गिनें द्विवेदी जी महाराज इन दोहों की मात्रा और करें इनका संशोधन और बतावें हमको कि क्या हक है उनको इनके संशोधन करने का। (बालमुकुन्द रचनावली, सं. के सी यादव से साभार)

औरंगज़ेब और हिन्दू मंदिर

□ बी.एन. पाण्डे

बिश्वम्भरनाथ पाण्डे प्रसिद्ध इतिहासकार, गांधी दर्शन के मर्मज्ञ कवि, प्रखर स्वतंत्रता सेनानी, और साम्प्रदायिक सद्भावना के प्रबल समर्थक थे। उनका पहला ग्रंथ 'विश्व का सांस्कृतिक इतिहास' सात भागों में सन् 1952 में प्रकाशित हुआ। हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू में लगभग 25 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। उनके सम्पादन में 4 जिल्दों में 'स्पिरिट आफ इंडिया' सन् 1975 में प्रकाशित हुई, जिसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। श्री पांडे उत्तर प्रदेश की विधान सभा और विधान परिषद् के भी विधायक रहे हैं। 1976 से 1982 तक राज्य सभा के मनोनीत सदस्य, 1982-83 में निर्वाचित सदस्य और 1988 में पुन: उन्हें राष्ट्रपति ने 6 वर्ष के लिए राज्य सभा का सदस्य मनोनीत किया। सन् 1983 से 1988 तक उड़ीसा के राज्यपाल के पद पर आसीन रहे। अपने लंबे कारावास जीवन में संसार के विविध धर्मों का गहरा अध्ययन किया है। सन् 1980 से गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के कार्यवाही अध्यक्ष और बाद में उपाध्यक्ष की हैसियत से सम्बद्ध रहे। सन् 1976 में उन्हें पदम्श्री की उपाधि से सम्मानित किया गया। - सं.

जिस तरह शिवाजी के संबंध में अंग्रेज़ इतिहासकारों ने ग़लतफ़हमियां पैदा की, उसी तरह औरंगज़ेब के संबंध में भी।

एक उर्दू शायर ने बड़े दर्द के साथ लिखा है-

तुम्हें ले दे के, सारी दास्तां में, याद है इतना;
कि आलमगीर हिन्दुकुश था, ज़ालिम था, सितमगर था!

बचपन में मैंने भी इसी तरह का इतिहास पढ़ा था और मेरे दिल में भी इसी तरह की बदगुमानी थी। लेकिन एक घटना ऐसी पेश आई, जिसने मरी राय बदल दी। मैं सन् 1948-53 में इलाहाबाद म्युनिसिपैलटी का चेयरमैन था। त्रिवेणी संगम के निकट सोमेश्वरनाथ महादेव का मंदिर है। उसके पुजारी की मृत्यु के बाद मंदिर और मंदिर की जायदाद के दो दावेदार खड़े हो गए। दोनों ने म्यूनिसिपैलटी में अपने नाम दाखिल ख़ारिज की दरख़ास्त दी। उनमें से एक फ़रीक़ ने कुछ दस्तावेज़ भी दाख़िल किए थे। दूसरे फ़रीक़ के पास कोई दस्तावेज़ न था। जब मैंने दस्तावेजों पर नज़र डाली तो देखा कि वह औरंगज़ेब का फ़रमान था, जिसमें मंदिर के पुजारी को ठाकुर जी के भोग और पूजा के लिए जागीर में दो गांव अता किए गए थे। मुझे शुबहा हुआ कि यह दस्तावेज़ नकली है। औरंगज़ेब तो बुतशिकन, मूर्तिभंजक था। वह बुतपरस्ती के साथ कैसे अपने को वाबस्ता कर सकता था। मैं अपना शक रफ़ा करने के लिए सीधा अपने चैंबर से उठकर सर तेज बहादुर सप्रू के यहां गया। सप्रू साहब फ़ारसी के

आलिम थे। उन्होंने फ़रमान को पढ़कर कहा कि यह फ़रमान असली है।

मैंने कहा-'डाक्टर साहब! आलमगीर तो मंदिर तोड़ता था। बुतशिकन था, वह ठाकुर जी को भोग और पूजा के लिए कैसे जायदाद दे सकता था?'

डा. सप्रू साहब ने अपने मुंशी को आवाज़ देकर कहा-'मुंशी जी ज़रा बनारस के जंगमबाड़ी शिवमंदिर की अपील की मिसिल तो लाओ।' डाक्टर सप्रू इलाहाबाद में इस मुक़द्दमें के एक पक्ष के वकील थे।

मुंशी जी मिसिल लेकर आये तो डाक्टर सप्रू ने दिखाया कि उसमें औरंगज़ेब के चार फ़रमान और थे जिनमें जंगमों को माफ़ी की ज़मीन अता की गई थी।

डाक्टर सप्रू हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के अध्यक्ष थे, जिसके पदाधिकारियों में डाक्टर भगवान, सैयद सुलेमान, सैयद सुलेमान नदवी, पंडित सुंदर लाल और डाक्टर ताराचन्द थे। मैं भी उसकी गवर्निंग बाडी का एक मैंबर था। डा. सप्रू की सलाह से मैंने भारत के प्रमुख मंदिरों की सूची प्राप्त की और उन सबके नाम पत्र लिखा कि अगर उनके मंदिरों को औरंगज़ेब या मुग़ल बादशाहों ने कोई जागीर दी हो, तो उनकी फोटो कापियां मेहरबानी करके भेजिये। दो तीन महीने की प्रतीक्षा के बाद हमें महाकाल मंदिर (उज्जैन), बालाजी मंदिर (चित्रकूट), उमानन्द मंदिर (गोहाटी), जैन मंदिर (गिरनार), दिलवाड़ा मंदिर (आबू), गुरुद्वारा रामराय (देहरादून) वग़ैरह से सूचना मिली कि उनको औरंगज़ेब ने जागीरें अता की थीं। एक नया औरंगज़ेब हमारी आंखों के सामने उभर कर आया।

औरंगज़ेब ने इन मंदिरों को जागीरें अता करते हुए मंदिंर के पुजारियों से यह अपेक्षा की थी कि अपने ठाकुर जी से वह इस बात की प्रार्थना करें कि उसके खानदान में ताक़यामत हुकूमत बनी रहे।

हमारी तरह हमारे आदरणीय मित्र और अन्वेषक श्री ज्ञानचन्द्र एवं प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डा. परमेश्वरीलाल गुप्त ने भी अपने शोध प्रबंधों से हमारे इस कथन की पुष्टि की है। उनके अनुसार :

'हिन्दूद्रोही और मंदिर भंजक के रूप में जिस किसी इतिहासकार ने औरंगज़ेब का यह चित्र उपस्थित किया, उसने अंग्रेजों को अपनी फूट डालो और राज करो वाली

नीति के प्रतिपादन के लिए एक जबरदस्त हथियार दे दिया। उसका भारतीय जनता पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि उदार राष्ट्रीय विचारधारा के इतिहासकार और विशिष्ट चिंतक भी उससे अपने को मुक्त नहीं कर सके हैं। उन्होंने भी स्वयं तटस्थ भाव से तथ्यों का विश्लेषण न कर यह मान लिया है कि औरंगज़ेब हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु था।'

'इसमें संदेह नहीं, औरंगज़ेब एक धर्मनिष्ठ मुसलमान था। उसने ऐसे अनेक कार्य किए, जिनसे उसकी इस्लाम के प्रति निष्ठा प्रकट होती है। उसने सत्तारूढ़ होते ही अपने सिक्कों पर उस कलमा के अंकन का निषेध किया, जिसे पूर्ववर्ती प्रायः सभी मुसलमान शासक इस्लाम धर्म का मूल मंत्र मानकर अपने सिक्कों पर अंकित करना अपना परम कर्त्तव्य मानते थे। औरंगज़ेब ने इस बात को सवर्था भिन्न दृष्टि से देखा। उसकी अपनी मान्यता थी कि सिक्के ऐसे लोगों के हाथों में भी जाएंगे, जो इस्लाम धर्म के अनुयायी नहीं हैं। इसी प्रकार उसके द्वारा जज़िया कर का जारी किया जाना भी उसकी इस्लामी सिद्धांतों के प्रति आस्था का प्रतीक है। इस्लामी शरीयत के अनुसार, किसी इस्लामी शासक की सेना में यदि कोई ग़ैर मुसलमान व्यक्ति सैनिक न बनना चाहे तो सैनिक सेवा के बदले उससे एक हल्का सा कर लेने का विधान इस्लामी शास्त्रविदों ने किया है, उसे ही जज़िया कहते हैं। यह कर इस देश में मुसलमानों के शासन के आरंभ से ही प्रचलित था और इसके प्रति कभी किसी को किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं दिखाई पड़ता था। अकबर ने अपनी उदार नीति के कारण इस कर को अपने समय में बंद कर दिया। औरंगज़ेब ने इतना ही किया कि उसे फिर से जारी कर दिया।

'औरंगज़ेब के इन तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यों को यदि तटस्थ भाव से देखा जाए तो उनमें ऐसी कोई बात नहीं मिलेगी जो उसकी अपनी धर्मनिष्ठा भावना के अतिरिक्त किसी अन्य बात का प्रतीक हो और हिन्दू अथवा किसी दूसरे धर्म के प्रति विद्वेष अथवा असहिष्णु भाव की अभिव्यक्ति हो। अतः हमारे इतिहासकारों की औरंगज़ेब के संबंध में क्या धारण रही है, इसको जानने और मानने की अपेक्षा अधिक उचित यह होगा कि हम औरंगज़ेब के समसामयिक बुद्धिवादियों के कथन को महत्व दें और देखें और जानें कि औरंगज़ेब के संबंध में उनकी क्या धारणा थी।'

गुर्जर कवि भगवतीदास का औरंगज़ेब के संबंध में कहना है-

नरपति तिहां अै राजै नौरंग,
जाकी अज्ञा बहै अखण्ड
ईत भीत व्यापै नहीं कोय,
इह उपगार नृपति के होय।

इसी प्रकार जैन मुनि रामचंद्र ने लिखा है-

मरदानो अे महाबली औरंगशाहि नरन्द,
तासु राज में हर्ष सूं, रच्यो शास्त्र आनन्द।

इन कवियों से अधिक हिन्दी भाषा-भाषियों का परिचय सबलसिंह चौहान से है। उन्होंने औरंगज़ेब के शाासनकाल में महाभारत को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया था। उन्होंने शल्यपर्व के अंत में लिखा है-

औरंगशाह दिल्ली सुलताना,
प्रबल प्रताप जगत सत जाना।

यदि औरंगज़ेब के मन में हिन्दू धर्म अथवा किसी अन्य धर्म के प्रति किसी प्रकार की कोई कटुता अथवा असहिष्णुता का भाव होता अथवा ये कवि उसके व्यवहार में किसी प्रकार की गंध अनुभव करते, तो वे जो औरंगज़ेब के दरबारी कवि नहीं थे, उसे कभी इन शब्दों में स्मरण नहीं करते।

यदि हम किसी कारण कवियों की इन बातों को महत्व न दें तो भी हिन्दुओं के प्रति औरंगज़ेब के भावों को स्पष्ट करने वाले प्रमाणों की कमी नहीं है। औरंगज़ेब और उसके अधिकारियों द्वारा ब्राह्मण और पुजारियों को दिए खैरात (दान) और निसार (निछावर) संबंधी अनेक आदेशपत्र उपलब्ध हैं। उनकी प्रमाणिकता को स्वीकार करना ही होगा।

उज्जैन के महाकालेश्वर के मंदिर का हिन्दू मतावलम्बियों में विशेष मान-सम्मान है। इस मंदिर के पुजारियों के पास, उनके पूर्वजों के नाम मालवा के सुबेदारों द्वारा औरंगज़ेब के शासनकाल के 7वें वर्ष से 48वें वर्ष के बीच जारी की गई 13 सनदें सुरक्षित हैं। इनमें से एक सनद औरंगज़ेब के आठवें राज्यवर्ष में मालवा के सूबेदार मुहम्मद समी द्वारा जारी की गई है। इससे ज्ञात होता है कि मुरार और कूका नामक दो ब्राह्मण भाइयों को पिछले पचास वर्षों से ईश्वर की सेवा करने (बन्दगान ए आला हज़रत) के उपलक्ष में प्रतिवर्ष 50 दाम प्राप्त होता रहा। उसे इस सनद द्वारा मुहम्मद समी को आगे निरंतर दिए जाते रहने का आदेश दिया है। स्पष्ट है, यह ब्राह्मण या तो किसी मंदिर के पुजारी थे अथवा हिन्दुओं के पुरोहित। उन्हें राज्य की ओर से जो सहायता पहले से मिलती चली आ रही थी, उसे औरंगज़ेब के शासनकाल में भी बदस्तूरी क़ायम रखा गया। यदि औरंगज़ेब के हृदय के कहीं किसी कोने में हिन्दू धर्म के प्रति दुर्भावना होती तो उसका सूबेदार इस प्रकार की सनद कदापि जारी न करता।

उज्जैन की उपर्युक्त सनदों में से दस सनदों से ज्ञात होता है कि औरंगज़ेब के 7वें राज्यवर्ष में सूबेदार नजावत खां ने कूका ब्राह्मण को खैरात के रूप में चबूतरा कोतवाली की आय से नित्य तीन मुरादी टंक दिए जाने का आदेश दिया था, ताकि वह जीवनयापन कर सके और राज्य की समृद्धि के लिए प्रार्थना किया करे। 17वें राज्य वर्ष में कूका की मृत्योपरांत यह खैरात उसके पुत्र कांजी को देने का आदेश हुआ और 19वें राज्यवर्ष में हबीबुल्लाह अल-हसनी ने उसे बढ़ाकर चार आना कर दिया। 26वें राज्यवर्ष में सूबेदार खान ज़मां द्वारा इस खैरात को मान्यता दी गई। 48वें राज्यवर्ष में मुगलखां की सूबेदारी में इस ख़ैरात को स्थायी कर दिया गया। दो अन्य सनदों से, जो क्रमशः 18वें और 19वें राज्यवर्ष में जारी की गई हैं, पता चलता है कि राज्य की समृद्धि की प्रार्थना करने के निमित्त कांजी को हर साल खरीफ़ के समय ख़ैरात स्वरूप साढ़े दस रुपए मिलते थे। ये सनदें इस बात का प्रतीक हैं कि औरंगज़ेब के शासनकाल में खैरात वितरण में हिन्दू मुसलमान जैसा भेद न था। खैरात का अधिकारी ब्राह्मण भी समझा जाता था।

इन सनदों के संबंध में कहा जा सकता है कि सनदें औरंगज़ेब ने स्वयं जारी नहीं की है, उसके अधिकारियों ने उसके परोक्ष में अपनी दयानतदारी के फलस्वरूप जारी की होंगी। अतः उचित होगा कि स्वयं औरंगज़ेब द्वारा जारी किए गए फ़रमानों की ही चर्चा की जाए। अस्तु, औरंगज़ेब ने अपने 9वें राज्यवर्ष के 2 सफ़र को एक फ़रमान दखिनकुल सरकार स्थित परगना पाण्डु के पट्ट बंगेसर के प्रमुख अधिकारियों, चौधरी,

कानूनगो, मुकद्दम तथा किसानों के नाम जारी किया था। इस फ़रमान में कहा गया है कि भूतपूर्व शासकों ने उमानन्द मंदिर के पुजारी सूदामन और उसके बेटे को सकरा ग्राम में ढाई बिस्वा जमीन, जिसकी जमा (आय) 30 रुपया है, प्राप्त रही है। उनका यह अधिकार प्रमाणित है। अत: उक्त ग्राम के महसूल (आय) से बीस रुपया नकद और शेष इंटाखाली ग्राम की जमा को छोड़ कर जंगल के रूप में दी जाती है, ताकि वह उसका उपयोग देवता के भोग और अपने जीवनयापन में कर सकें और राज्य के चिरस्थायी बने रहने की कामना करते रहें। इस फ़रमान में अधिकारियों को आदेश है कि जो आय और भूमि उन लोगों (सुदामन और उनके बेटे) के अधिकार में है, उनके अधिकार में छोड़ दी जाए और उनके इस अधिकार में किसी प्रकार की कोई बाधा न दी जाए। इस सनद में द्रष्टव्य यह है कि औरंगज़ेब ने ब्राह्मण पुजारियों को भूमि न केवल जीवनयापन वरन् भोग (मंदिर की पूजा) के लिए भी दी थी।

इस फ़रमान के संबंध में कहा जा सकता है कि यह औरंगज़ेब का अपना दान नहीं है। वरन् पिछले राजाओं द्वारा दिए गए दान की पुष्टि मात्र है। अत: उसके अपने दानों के फ़रमानों का उल्लेख अधिक संगत होगा। 1908 हिजरी का उसके द्वारा जारी किया गया एक फ़रमान है, जिसमें कहा गया है कि बनारस में गंगा किनारे बेनीमाधो घाट पर दो टुकड़े ज़मीन बिना निर्माण के खाली पड़ी है और बैत-उल-माल है। इनमें से एक बड़ी मसजिद के पीछे रामजीवन गुंसाई के मकान के सामने है और दूसरा उससे कुछ ऊंचाई पर है। इस भूमि के इन दोनों टुकड़ों को हम रामजीवन गुसांई और उसके लड़के को बतौर इनाम देते हैं, ताकि वह उस पर धार्मिक ब्राह्मणों और साधुओं के रहने के लिए सत्र बनवाएं और ईश्वर साधना में रत रहकर देव प्रदत्त साम्राज्य के स्थायी बने रहने की कामना करते रहें।

काशी में शैव सम्प्रदाय के लोगों का एक सुविख्यात मठ जंगमबाड़ी है। इस मठ के महंत के पास औरंगज़ेब द्वारा कतिपय फ़रमान हैं। इनमें से पांच रमज़ान 1071 हिजरी को जारी किया गया औरंगज़ेब का फ़रमान है, जिसके द्वारा उसने जंगमों को परगना बनारस में 178 बीघा ज़मीन अपने सिर के निसार (निछावर) स्वरूप प्रदान किया है और कहा है कि यह भूमि माफ़ी समझी जाए ताकि वह उसका उपयोग कर सकें और राज्य के चिरस्थायी बने रहने की कामना करते रहें। इसी भूमि से संबंधित एक दूसरा फ़रमान भी है जो एक रबी-उल-अव्वल 1078 हिजरी का है। इसमें उक्त दान की पुनरुक्ति है और आदेश दिया गया है कि उस भूमि पर जंगमों के अधिकार में कोई हस्तक्षेप न करे।

ये राजपत्र इस बात की स्पष्ट अभिव्यक्ति करते हैं कि औरंगज़ेब का हिन्दू धर्म के प्रति कोई विद्वेषात्मक भाव न था। यह बात मूर्तियों और मंदिरों के संबंध में भी कही जा सकती है।

1908 हिजरी का उसके द्वारा जारी किया गया एक फ़रमान है, जिसमें कहा गया है कि बनारस में गंगा किनारे बेनीमाधो घाट पर दो टुकड़े ज़मीन बिना निर्माण के खाली पड़ी है और बैत-उल-माल है। इनमें से एक बड़ी मसजिद के पीछे रामजीवन गुंसाई के मकान के सामने है और दूसरा उससे कुछ ऊंचाई पर है। इस भूमि के इन दोनों टुकड़ों को हम रामजीवन गुसांई और उसके लड़कबे को बतौर इनाम देते हैं, ताकि वह उस पर धार्मिक ब्राह्मणों और साधुओं के रहने के लिए सत्र बनवाएं और ईश्वरसाधना में रत रहकर देव प्रदत्त साम्राज्य के स्थायी बने रहने की कामना करते रहें।

ऊपर हमने उज्जैन के महाकालेश्वर के मंदिर का जिक्र किया है। इस मंदिर में दिन-रात घी का दीप जलता रहता है। इस दीप को 'नन्ददीप' कहते हैं। इस दीप के प्रज्वलन के लिए अतीत काल से राज्य की ओर से घी दिया जाता था और यह प्रथा मुग़लकाल में भी प्रचलित थी। यह मुरादबख़्श के एक फ़रमान से प्रकट होता है, जिसे उसने पिता शाहजहां के शासनकाल में 5 शव्वाल 1061 हिजरी को जारी किया था। इस फ़रमान के अनुसार, चबूतरा कोतवाली के तहसीलदार को आदेश दिया गया था कि वह मंदिर को नित्य चार (अकबरी) सेर घर दिया करे। यह फ़रमान मंदिर के पुजारी देवनारायण के आवेदन पर जारी किया गया था। आवेदन में कही गई बात की तसदीक़ मुहम्मद मेंहदी नामक वाक़यानवीस ने की थी और उसके तसदीक़ करने पर ही फ़रमान जारी किया गया था। इस फ़रमान की मूल प्रति तो महाकालेश्वर के पुजारी के पास नहीं है किंतु उसकी एक प्रमाणित प्रति, जिसे 1153 हिजरी में मुहम्मद सादुल्लाह ने जारी किया था, उनके पास उपलब्ध है। इस नकल के आधार पर यह अनुमान सहज में किया जा सकता है कि इस फ़रमान में दिए हुए आदेश का कम से कम 1153 हिजरी तक निरंतर पालन होता रहा। यदि ऐसा न होता तो महत्वहीन राजपत्र की नक़ल प्राप्त करने का प्रयास करने की किसी को आवश्यकता न थी। यदि वह अनुमान सही है तो कहा जा सकता है कि औरंगज़ेब के शासनकाल में, जो मूल फ़रमान और नक़ल के बीच का काल है, महाकालेश्वर के मंदिर के मंदिर को राज्य की ओर से घी प्राप्त होता था।

मंदिरों के प्रति सद्भावना के इस परोक्ष प्रमाण के अतिरिक्त प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप उस फ़रमान का उल्लेख किया जा सकता है, जिसे औरंगज़ेब ने उमानन्द के पुजारी के हक़ में जारी किया था और जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। इस फ़रमान के अनुसार, पुजारी को जिस उद्देश्य से भूमि दी गई थी, उसमें मंदिर का भोग भी सम्मिलित था। यदि औरंगज़ेब भोग के लिए भूमि दे सकता था तो कोई कारण नहीं कि पहले से चली आई परम्परा के अनुसार महाकालेश्वर के नन्ददीप के लिए घी न दिया हो।

मंदिरों के प्रति उसका दृष्टिकोण एक अन्य फ़रमान से भी स्पष्ट होता है, जिसे उसने 10 रजब 1070 हिजरी को अहमदाबाद के नगरसेठ सहसभाई के पुत्र शांति-दास जौहरी के आवेदन पर जारी किया था। इस फरमान के द्वारा पालिताना ग्राम, शत्रुन्जय पर्वत तथा उस पर मंदिर श्रावक जैन समाज को प्रदान किया गया है। इस फ़रमान में कहा गया है कि शत्रुन्जय पर्वत पर जो भी इमारती लकड़ी और ईंधन उपलब्ध हो वह श्रावक समाज की सम्पति है वे उसका उपयोग जिस रूप में चाहे करें,

जो कोई शत्रुन्जय पर्वत और मंदिर का प्रबंध करेगा, उसे पालिताना की आय प्राप्त होती रहेगी, ताकि वे राज्य के चिरस्थायी बने रहने की प्रार्थना करते रहें।

औरंगज़ेब की भावना को स्पष्ट करने की दृष्टि से अधिक महत्व का वह फ़रमान है जिसे उसने जालना के एक ब्राह्मण की फ़रियाद पर जारी किया था। उस ब्राह्मण ने अपने घर में गणेश की एक मूर्ति प्रतिष्ठित की थी। उसे वहां के एक मुसलमान अधिकारी ने हटवा दिया था। इस कार्य के विरुद्ध उस ब्राह्मण ने औरंगज़ेब से फ़रियाद की। औरंगज़ेब ने तत्काल मूर्ति लौटा देने का आदेश दिया और इस प्रकार के हस्तक्षेप का निषेध किया।

इन सबसे अधिक महत्व का है वह फ़रमान, जो 'बनारस फ़रमान' के नाम के इतिहासकारों के बीच प्रसिद्ध है और जिसको लेकर यदुनाथ सरकार सदृश गंभीर इतिहासकार ने अपनी 'हिस्ट्री आफ़ औरंगज़ेब' में यह मत प्रतिपादित किया है कि औरंगज़ेब ने हिन्दूधर्म पर अपना आक्रमण बड़े छद्म रूप में प्रारंभ किया। इस फ़रमान का सहारा लेकर यदुनाथ सरकार ने औरंगज़ेब को धर्मान्ध सिद्ध करने के प्रयत्न में इस फ़रमान के केवल कुछ शब्द ही उद्धृत किए हैं। यदि इन इतिहासकारों ने ईमानदारी बरती होती और समूचे फ़रमान को सामने रखकर सोचा होता तो तथ्य निस्संदेह भिन्न रूप में सामने आता और औरंगज़ेब का वह रूप सामने न होता जो इन इतिहासकारों ने प्रस्तुत किया है।

इस फरमान के संबंध में 1905 में ई. से पूर्व किसी भी इतिहासकार को कोई जानकारी न थी। उस समय तक वह काशी के मंगला गौरी मुहल्ले के एक ब्राह्मण परिवार में दबा पड़ा था। उस वर्ष किसी पारिवारिक विवाद के प्रसंग में गोपी उपाध्याय के दौहित्र मंगल पाण्डेय ने इस फ़रमान को सिटी मैजिस्ट्रेट की अदालत में उपस्थित किया। वहां से इसकी गन्ध इतिहासकारों को प्राप्त हुई और इसकी चर्चा एक शोध पत्रिका में की गई। उस पत्रिका में यह फ़रमान अविकल रूप में उद्धृत है किन्तु उसे देखने की चेष्टा नहीं की गई। अतः कुछ कहने से पहले आवश्यक है कि इस फ़रमान को अविकल रूप में उद्धृत किया जाए। यह फ़रमान 15 जमादी-उल-सानी 1069 हिजरी को बनारस के स्थानीय प्रशासक अबुल हसन के नाम जारी किया गया है:

'मुराहिमें-जाती व मक़ारिमें-जिबिल्ली हमगो हिम्मत वाला नेअमत
व तमामी नीयते हक़्क़ तबीयत बर रिफ़ाहिते जमहूरे बनाम व
इंतज़ामे अहवाल तवक़्क़ात-ए-खास-ओ-आम मसरुफ अस्तव अज़रुए
शरए शरीफ़ व मिल्लते मनीफ मुक़र्रर चुनीं अस्त की देरहाय बरन्दाख्त
न शवद व बुतकदए ताज़ा बिना नयावद व दरीं अहयाये मादलत
इन्तज़ाम व अर्ज़े अशरफ़े अक़दस अरफ़ा आला रसीद कि बाज मुर्दम
अज़ रहे अनफ़ो तअद्दी व हुनूदे सकनाऐ क़स्बये बनारस व बरुखी
अमकनाहाये दीगर कि बनवाहिये आं वाक़े अस्त व जमाअते बरहमनान
सकनए आं महाल कि सदानते बुतखानाहाय क़दीमें आंजहा व
आं हां तअल्लुद दारद मज़ाहिम व मोअतरिज़ मी शवद व मी
काहन्द कि ईनां राह अज़ सदानत कि अज़ मुद्दते मदीद व आहा
मुतअल्लिक अस्त बाज़ दारन्द। व ईमानी बाइसे परेशानी व
तफ़रक़ाये हाले ईरगिरोह मी कर्द लिहाज़ा हुक्मेवाला सादिर मी
शबद कि बाद अज़ वरुदे मनशूर ई लामे उन्नूर मुक़र्रर कुनद
कि मिन बाद अहदे बवजूद तआरु व तशबीश व अहवाले बरहमनान
व दीगर हनुदमुतबत्तिनान आं मुहाल न रिसानद ता आं हा
बदस्तूर ऐयामे पेशी बजा व मुक़ामे खुद बूदा। व जमीयते खातिर व दुआये बकाये दौलत अबद मुद्दत अजल बुनियाद क़ायम नुमायन्द दरीं बाब ताकीद दानद।'

'हमारी व्यक्तिगत एवं स्वाभाविक सद्भावनाएं समग्र रूप से ऐसी दिशा में झुकी हुई हैं कि जिससे जनता की भलाई और देश में रहने वालों का सुधार हो तथा हमारे दर्श में ऐसा निश्चित है कि मंदिर क़तई न तोड़े जाएं और नए मंदिर न बनवाए जाएं। हमारे न्यायपूर्ण राज्य में यह सूचना मिली है कि कुछ लोग बनारस के रहने वाले हिन्दुओं पर और उसके पास अन्य रहने वालों पर, वहां के रहने वाले ब्रांह्मणों पर, जो कि मंदिरों का इन्तज़ाम करते रहे हैं, हस्तक्षेप कर अत्याचार करते हैं और चाहते हैं कि वहां का प्रबंध, जो चिरकाल से उनके हाथ में है, छीन लें। इस कारण वे लोग बहुत परेशान और बेहाल हैं। अतः यह आदेश भेजा जाता है कि इस फरमान के पहुंचने के साथ ही दृढ़ता के साथ यह घोषित कर दिया जाए कि कोई भी व्यक्ति किसी भी कारण इन ब्राह्मणों और इस स्थान के रहने वाले अन्य हिन्दुओं को बिल्कुल न छेड़ें और न उन्हें परेशान करें। वे पूर्ववत् अपनी जगह और अपने मकान पर रहकर शांतिपूर्वक हमारे शासन के स्थायित्व के लिए सदैव प्रार्थना करते रहें। इस आदेश को आवश्यक और गंभीर समझा जाए।'

इस फ़रमान का शब्दानुवाद इस प्रकार होगा-'हमारी व्यक्तिगत एवं स्वाभाविक सद्भावनाएं समग्र रूप से ऐसी दिशा में झुकी हुई हैं कि जिससे जनता की भलाई और देश में रहने वालों का सुधार हो तथा हमारे देश में ऐसा निश्चित है कि मंदिर क़तई न तोड़े जाएं और नए मंदिर न बनवाए जाएं। हमारे न्यायपूर्ण राज्य में यह सूचना मिली है कि कुछ लोग बनारस के रहने वाले हिन्दुओं पर और उसके पास अन्य रहने वालों पर, वहां के रहने वाले ब्राह्मणों पर, जो कि मंदिरों का इन्तज़ाम करते रहे हैं, हस्तक्षेप कर अत्याचार करते हैं और चाहते हैं कि वहां का प्रबंध, जो चिरकाल से उनके हाथ में है, छीन लें। इस कारण वे लोग बहुत परेशान और बेहाल हैं। अतः यह आदेश भेजा जाता है कि इस फरमान के पहुंचने के साथ ही दृढ़ता के साथ यह घोषित कर दिया जाए कि कोई भी व्यक्ति किसी भी कारण इन ब्राह्मणों और इस स्थान के रहने वाले अन्य हिन्दुओं को बिल्कुल न छेड़ें और न उन्हें परेशान करें। वे पूर्ववत् अपनी जगह और अपने मकान पर रहकर शांतिपूर्वक हमारे शासन के स्थायित्व के लिए सदैव प्रार्थना करते रहें। इस आदेश को आवश्यक और गंभीर समझा जाए।'

इस फरमान में कहीं भी ऐसा कुछ नहीं है, जिसे यदुनाथ सरकार की शब्दावली

में 'छद्‌म रूप से हिन्दू धर्म पर आक्रमण' की संज्ञा दी जा सके। वरन्‌ इस फ़रमान से, इसके विपरीत, यह ज्ञात होता है कि हिन्दुओं और ब्राह्मणों के धार्मिक मामलों-मंदिरों के प्रबंध में कुछ लोग अनुचित हस्तक्षेप कर रहे थे और उन्हें तंग कर रहे थे। हो सकता है, मंदिरों को तोड़े जाने की बात भी की जा रही हो। इन सबकी शिकायत जब औरंगज़ेब के पास पहुंची तो उसने यह फ़रमान जारी कर उसकी आवश्यकता और गंभीरता पर ज़ोर देते हुए दुष्टता करने वालों को कड़ी चेतावनी दी। स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सम्राट के धर्म अर्थात्‌ इस्लाम में यह आदेश है कि मंदिर क़तई न तोड़े जाएं और नए मंदिर न बनवाए जाएं।

यदि तटस्थ भाव से देखा जाए तो इस फरमान में हिन्दुओं के विरुद्ध औरंगज़ेब के अपने किसी आदेश की कोई गंध नहीं है। नए मंदिरों के बनवाने पर प्रतिबंध दिल्ली के पठान सुल्तानों के समय से ही चला आ रहा था। उन्होंने नए मंदिर बनवाने और पुराने मंदिरों की मुरम्मत कराने पर रोक लगाई थी। यह आदेश उस समय कठोरतापूर्वक पालन किया जाता रहा। मुग़लकाल में बाबर ने मंदिरों की सुरक्षा का आदेश दिया। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता और उदारता का गुणगान करते हुए हमारे इतिहासकार नहीं थकते, किन्तु उसके शासनकाल में भी इस प्रतिबंध के हटाये जाने की कोई घोषणा स्पष्ट शब्दों में नहीं की गई। काशी के विश्वनाथ मंदिर के निर्माण की बात जब अकबर के समय में उठी तो यह आवश्यक समझा गया कि उसके निर्माण से पूर्व उसके लिए सम्राट की अनुमति प्राप्त की जाए और अनुमति प्राप्त करने के बाद ही उसका निर्माण हो सका। यदि इन तथ्यों को ध्यान में रखा जाए तो औरंगजेब के प्रति हिन्दूद्वेषी और मंदिर विनाशक कहने की कोई भावना नहीं उभरती।

इन सब तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उभरता है कि यदि औरंगज़ेब का वस्तुत: इस कथन में विश्वास था कि मंदिर न तोड़े जाएं तो फिर क्यों उसी के शासनकाल में और उसी के आदेश से ज्ञानवापीवाला विश्वनाथ मंदिर तोड़ा गया? इस संबंध में हम पाठकों का ध्यान पट्टाभि सीतारामैया की पुस्तक 'फेदर्स एंड स्टोन्स' की ओर आकृष्ट करना चाहेंगे। उन्होंने इस ग्रंथ में लिखा है कि लखनऊ के किसी प्रतिष्ठित मुसलमान सज्जन (नाम/ नहीं दिया है।) के पास कोई हस्तलिखित ग्रंथ था जिसमें इस घटना पर प्रकाश डाला गया है। सीतारामैया का कहना है कि इस ग्रंथ का समुचित परीक्षण किए जा सकने के पूर्व उक्त सज्जन का निधन हो गया और वह ग्रंथ प्रकाश में आ सका। उस ग्रंथ में इस घटना के संबंध में जो कुछ कहा गया था उसका सीतारामैया ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है। उनके कथानुसार घटना इस प्रकार है :

'तत्कालीन शाही परम्परा के अनुसार, जब मुग़ल सम्राट किसी यात्रा पर निकलते थे, तो उनके साथ राज सामन्तों की काफी बड़ी संख्या चलती थी और उनके साथ उन सबका अन्त:पुर भी चलता था। कहना न होगा, मुगल दरबार में हिन्दू सामंतों की संख्या काफी बड़ी थी। उक्त ग्रंथ के अनुसार, एक बार औरंगज़ेब बनारस के निकट के प्रदेश से गुज़र रहे थे। ऐसे अवसर पर भला कौन हिन्दू होता जो दिल्ली जैसे दूर प्रदेश से आकर गंगा स्नान और विश्वनाथ दर्शन किए बिना चला जाता, विशेष रूप से स्त्रियां। अत: प्राय: सभी हिन्दू दरबारी अपने परिवार के साथ गंगा स्नान करने और विश्वनाथ दर्शन के लिए काशी आए। विश्वनाथ के दर्शन कर जब लोग बाहर आए तो ज्ञात हुआ कि उनके दल की एक रानी गायब है। इस रानी के संबंध में कहा जाता है कि कच्छ की रानी थी। लोगों ने उन्हें मंदिर के भीतर जाते देखा था पर मंदिर से बाहर आते वह किसी को नहीं दिखीं। लोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वह मंदिर के भीतर ही कहीं रह गई है। काफी छानबीन की गई तो मंदिर के नीचे एक दुमंजिले तहखाने का पता चला जिसका द्वार बाहर से बंद था। उस द्वार को तोड़कर जब लोग अंदर घुसे तो उन्हें वस्त्राभूषण विहीन, भय से त्रस्त रानी दिखाई पड़ी। जब औरंगज़ेब को पण्डों की यह काली करतूत ज्ञात हुई तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ और बोला-जहां मंदिर के गर्भ-ग्रह के नीचे इस प्रकार की डकैती और बलात्कार हो, तो वह निस्सन्देह ईश्वर का घर नहीं हो सकता। और, उसने उसे तुरंत गिरा देने का आदेश दिया। आदेश का तत्काल पालन हुआ। जब उक्त रानी को सम्राट के इस आदेश और उसके परिणाम की सूचना मिली तो वह अत्यंत दु:खी हुई और उसने सम्राट से कहला भेजा कि इसमें मंदिर का क्या दोष, दुष्ट तो पण्डे हैं। उसने यह भी हार्दिक इच्छा प्रकट की कि उसका फिर से निर्माण करा दिया जाए। औरंगज़ेब के अपने धार्मिक विश्वास के कारण, जिसका उल्लेख उसने बड़ी स्पष्टता से अपने उपर्युक्त 'बनारस फरमान' में किया है, उसके लिए फिर से नया मंदिर बनवाना संभव न था। अत: उसने मंदिर के स्थान पर मसजिद खड़ी कर रानी की इच्छा पूरी की।

यह घटना कितनी ऐतिहासिक है, यह कहने के लिए सम्प्रति कोई साधन नहीं है किंतु इस प्रकार की घटनाएं प्राय: मंदिरों में घटती रही हैं, यह सर्वविदित है। यदि ऐसी कोई घटना औरंगज़ेब के समय में घटी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उसी की अनुगूंज इस अनुश्रुति में होगी जिसे सीतारामैया में लिपिबद्ध किया है। यदि ऐसी घटना वस्तुत: घटी थी तो औरंगज़ेब सदृश मुसलमान नरेश ही नहीं, कोई भी न्यायप्रिय शासक यही करता। यदि इस घटना के परिप्रेक्ष्य में विश्वनाथ मंदिर गिराया गया था तो उसके लिए औरंगज़ेब पर किसी प्रकार का कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता।

फिर भी औरंगज़ेब के प्रति लोगों के मन में दुर्भावना इस प्रकार घर कर गई है कि यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि ऐसी घटना किसी मसजिद में घटी होती तो क्या औरंगज़ेब उसे भी गिरवा देता? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए किसी कल्पना की आवश्यकता नहीं है। तथ्यपूर्ण उदाहरण उपलब्ध है। गोलकुण्डा के सूबेदार तानेशाह ने जो राज-कर एकत्र किया था, उसका पूरा-पूरा हिसाब वह औरंगज़ेब के सम्मुख उपस्थित न कर सका। उससे जब इस संबंध में पूछताछ की गई तो तो उसने किसी मस्जिद का नाम लेकर कहा कि उसने उस धन को जामे मसजिद के नीचे गाड़ रखा है। उसके इस कथन से औरंगज़ेब को बहुत क्रोध आया और उसने उस मसजिद को गिराकर उस धन को ढूंढ निकालने का आदेश दिया और वह मसजिद सचमुच उसके आदेश से गिरा दी गई।

साभार-भारतीय संस्कृति मुगल विरासत:औरंगज़ेब के फरमान

-दो जरूरी किताबें-

कृषि संकट को समझने के लिए

□ प्रवीन कुमार

भारत के किसान लम्बे समय से एक भयावह और जानलेवा कृषि संकट की गिरफ्त में है। बड़े फार्मर और धनी किसान भले ही इस संकट से ज्यादा प्रभावित न हुए हों, लेकिन देश के कुल किसानों का 90 प्रतिशत- छोटे और मध्यम किसान इस संकट के कारण लाखों की संख्या में आत्महत्या करने को मजबूर हुए हैं। सरकारों के कई नीम-हकीमी उपायों के बावजूद भी यह संकट लगातार बढ़ता गया है। छोटी जोत की आय से किसान परिवार का गुजारा चलना मुश्किल हो गया है। ये किसान परिवार कर्ज समेत अनेकों समस्याओं के भारी बोझ तले दबे हैं।

तात्कालिक और स्थानीय मांगों को लेकर किसानों के आन्दोलन और सरकारों द्वारा उनका लाठी-गोली से दमन रोजमर्रे की बात बन चुकी है। मुख्यधारा की राजनीतिक पार्टियों ने किसानों और उनकी समस्याओं से पल्ला झाड़ लिया है। संसदीय राजनीति में खेती-किसानी पर गंभीर चर्चा करना इतिहास की बात हो गयी है।

इस निराशा भरे माहौल में भी देश-दुनिया के कुछ जनपक्षधर बुद्धिजीवियों ने आज के खेती के संकट को समझने का प्रयास किया है, और लगातार कर रहे हैं।

दुनियाभर में मशहूर पत्रिका 'मन्थली रिव्यू' में इस विषय पर बहुत से लेख आये हैं। जिनमें से कुछ खास लेखों को चुनकर उनका हिंदी में अनुवाद करके 'गार्गी प्रकाशन' ने 'विश्वव्यापी कृषि संकट', 'विश्वव्यापी खाद्य संकट' के नाम से छापा है।

भारत समेत पूरी दुनिया में खेती के मौजूदा संकट को समझने के लिए इन दोनों पुस्तकों के लेख ठोस सैद्धान्तिक आधार प्रदान करते हैं। ये लेख खेती में पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की घुसपैठ और खेती पर उसके कब्जे, मौजूदा संकट के वैश्विक स्वरुप और उसके असमाधेय हो जाने तथा पिछली सदी में इस संकट के चीन द्वारा पेश किये गये समाधान की वैज्ञानिक जांच-पड़ताल करते हैं।

इन पुस्तकों की भाषा सैद्धान्तिक और गूढ़ तो जरुर है लेकिन खेती-किसानी का कोई संकट इसके दायरे से बाहर नहीं हैं। अगर हम अखरोट फोड़ कर उसकी गिरी का मजा लेने की हिम्मत करें तो ये पुस्तकें हमें खेती के तमाम संकटों, उनके कारणों और उनके समाधान को बहुत गहराई से समझा देती हैं। यहां हम इन पुस्तकों के कुछ जरूरी मुद्दों को संक्षेप में दे रहे हैं, ताकि पाठकों को इसका अंदाजा लगे कि कृषि और खाद्य संकट की जड़ें कितनी गहरी हैं और इसका जिम्मेदार कौन है।

खेती का संकट देवी सीता की तरह किसी घड़े से अचानक प्रकट नहीं हुआ हैं। इसकी जड़ें खेती के विकास के लिए शासक वर्गों की नीतियों और यूरोप की औद्योगिक क्रांति द्वारा खेती पर थोपे गये उद्योग के वर्चस्व में हैं। यह खेतीहर पैदावार के लिए अपनायी गयी उस पूंजीवादी प्रणाली के विकास का लाजिमी नतीजा है जिसका मकसद आदमी की बुनियादी जरूरतें पूरी करना नहीं बल्कि मुनाफा लूटना है।

अपने शुरुआती दौर में पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली ने ईश्वर और उसके पुत्रों--राजे-रजवाड़ों की सत्ता को ढहाकर अपनी शानदार भूमिका निभायी थी और सत्ता के केंद्र में ईश्वर के बजाय मानव को स्थापित किया था। लेकिन पुरानी दुनिया के खंडहरों पर जो नयी दुनिया बनाई गयी, वह बाज़ार और मुनाफे पर टिकी थी।

पूंजी को लगातार बढ़ाते जाना, वरना अपनी मौत को दावत देना पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली का अंतिम मकसद होता है। लेकिन खेती में पूंजी की घुसपैठ धीरे-धीरे और लम्बी प्रक्रिया में होती है जो उद्योगों में उत्पादन के उस तौर तरीके से भिन्न रूप में होती हैं, जिसे अट्ठारवीं और उन्नीसवीं सदी के कपड़ा बुनने के उदाहरण से समझा जाता है।

इस अंतर का कारण खेती के मूल चरित्र में है। खेती से पैदावार करने में जमीन ही सबसे बुनियादी साधन है। उद्योग में तकनीक का विकास करके मशीनरी आदि साधनों की लागत को लगातार घटाया जा सकता है लेकिन जमीन के मामले में ऐसा नहीं किया जा सकता। साथ ही उद्योग की लागतों की तरह इसकी बड़े पैमाने पर और नकदी में खरीद-बिक्री आसान नहीं है। उद्योग में बहुत से मजदूर एक छोटी जगह में मालिकों या मैनेजरों की नजरों के सामने काम करते हैं। जबकि दूर तक फैले बड़े-बड़े फार्मों में सब मजदूरों पर एकसाथ निगाह नहीं रखी जा सकती। मौसम में होने वाले उतार-चढाव का उद्योग पर कुछ खास फर्क नहीं पड़ता लेकिन खेती में पाला, गर्मी, ज्यादा बरसात, आंधी-तूफान एक-दो दिन में ही पूरी फसल को चौपट कर सकते हैं। खेती में कीट-पतंगे, बीमारियां तैयार फसल को तबाह कर देती हैं लेकिन उद्योग में ऐसा कोई डर नहीं है। खेती में कभी तो मजदूरों के लिए कोई काम नहीं होता और कभी अचानक बहुत ज्यादा मजदूरों की जरूरत हो जाती हैं। जबकि उद्योग में पहले से पता होता है कि कब कितने आदमियों की जरूरत होगी। उद्योग में नयी तकनीक विकसित करके उत्पादन की रफ्तार बढ़ायी जा सकती है लेकिन खेती में हर फसल

के पकने का समय तय है, उसे घटाया नहीं जा सकता। इन्हीं कारणों के चलते खेती में पूंजी की घुसपैठ धीरे-धीरे और उद्योग से अलग तरीकों से होती है।

राजे-रजवाड़ों के पुराने सामंती जमाने में किसान अपने परिवार और खेती की जरूरतों की पूर्ति या तो खुद ही कर लेता था या फिर बढई, लोहार, जुलाहे आदि पेशों में लगे लोगों का श्रम फसलाने के हिसाब से खरीदकर अपनी जरूरतों की पूर्ति करता था। बीज, खाद, हल बैल, खेती के साधारण औजार जैसी खेती की तमाम लागतें और आड़े वक्त के लिए श्रम या तो उसका अपना होता या फिर वह फसलाने और डंगवारे जैसे तरीकों से गांव से ही जुटा लेता था। इसी तरीके से रोटी कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी इंसानी जरूरतें भी पूरी हो जाती थी। गांव के कारीगर को पता होता था कि वह अमुक चीज किसके लिए बना रहा है और क्यों बना रहा है। इसी तरह किसान को भी पता होता था कि उसने फसल का कौन सा हिस्सा किसके लिए उगाया है। खेती की लागतें और पैदावार दोनों उसकी अपनी थी। खेती किसान की आमदनी का नहीं, बल्कि उसकी जरूरतों को पूरा करने का साधन थी।

किसान अपनी जरूरत को ध्यान में रखकर ही फसल उगाता था। फसल की लगभग सारी उपज किसान के परिवार, खेती की जरूरतों और सामंती लगान और नजरानों पर ही खर्च हो जाती थी। बाज़ार में किसान कभी-कभार ही अपनी उपज का कोई मामूली हिस्सा बेचता था। किसान की बचत को सामंती प्रभु लगान और उसके साथ-साथ किसान पर तरह तरह के जुर्माने, नजराने थोपकर जबरन हथिया लेते थे। इसके अलावा धर्म के ठेकेदार कभी जजिया कर लगाकर कभी दशमांश लगाकर किसान को लूटते थे। कुल मिलाकर सारे किलों, महलों, मंदिरों, मस्जिदों का बोझ किसान की पीठ पर ही लदा था। नतीजन किसान के समृद्ध होने की कोई गुंजाईश नहीं थी।

दुनिया अपनी गति से बदलती भी जा रही थी। पैदावार भी बढ़ रही थी, व्यापार भी बढ़ रहा था, दस्तकारी और खेती के औजारों में बदलाव आ रहे थे, लेकिन उनकी रफ़्तार बहुत धीमी थी। इसी दौरान यूरोप में एक नयी दुनिया गढ़ी जा रही थी वहां से उठे तूफ़ान ने दुनिया के बदलाव की रफ़्तार बहुत तेज़ कर दी। वहां नया विज्ञान, समाज और नयी-नयी संस्थाएं पैदा हुई। नये-नये औजार और नयी-नयी मशीनें बनने लगी। उत्पादन करने के लिए कारखाने लगे जिससे उत्पादन की रफ़्तार बहुत तेज़ हो गयी।

जमीन को रबर की तरह नहीं बढ़ाया जा सकता था। किसान के सामने एक ही रास्ता था कि वह दिये गये रकबे में ही ज्यादा से ज्यादा पैदावार करे। इसके लिए खेती की लागतों में नयी नयी चीजें जुड़ती गयीं जैसे सिंचाई के साधन, उर्वरक, कीटनाशक, ज्यादा उपज देने वाले बीज, मशीनें आदि। ये नयी लागतें किसान खुद तैयार नहीं कर सकता था। इन्हें तैयार करने वाले उद्योगों की एक पूरी कतार खड़ी हो गयी और इसके साथ ही किसान की आत्मनिर्भरता भी ख़त्म हो गयी। अब किसान अपनी जरूरत के हिसाब से फसलें नहीं उगा सकता था बल्कि उसे वे फसलें उगानी पड़ती जिनकी बाज़ार में ज्यादा मांग थी ताकि वह अपनी उपज बेचकर ज्यादा नकदी हासिल कर सके।

इस माल को तैयार करने के लिए कच्चे माल और बेचने के लिए बाज़ार की तलाश में दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में पहुंचने के लिए नये-नये रस्ते खोजे गये। दुनिया में व्यापार बहुत तेज़ हो गया। इसी व्यापार के जरिये दुनिया के अधिकांश हिस्से पर यूरोपियों ने कब्ज़ा किया। हमारे देश को भी अंग्रेजो ने गुलाम बनाया।

यह नया ज़माना खेती में भी नये बदलाव लेकर आया। भूपतियों को नयी-नयी चीजें खरीदने के लिए ज्यादा नकदी की जरूरत पड़ी। दुनिया में इतने ज्यादा किस्म के माल तैयार हो रहे थे कि बिना नकदी के कुछ भी लेन-देन या व्यापार संभव ही नहीं था। किसान पर भी नकद लगान के लिए दबाव पड़ा तो उसने फसल बेचने के लिए बाज़ार का रुख किया। बाज़ार के साथ रिश्ता बनते ही खेती और किसान की जिंदगी में जबरदस्त बदलाव आया। जैसे-जैसे दुनिया में नये-नये माल आते गये, भूपति किसान पर लगन का बोझ बढ़ाते गये। इसके अलावा भी बहुत सी तब्दीलियों ने किसान की नकदी की जरूरत को बढ़ाया। इसका नतीजा यह हुआ कि किसान पर ज्यादा से ज्यादा पैदावार करने और ज्यादा नकदी हासिल करने का दबाव बढ़ता ही गया।

जमीन को रबर की तरह नहीं बढाया जा सकता था। किसान के सामने एक ही रास्ता था कि वह दिये गये रकबे में ही ज्यादा से ज्यादा पैदावार करे। इसके लिए खेती की लागतों में नयी नयी चीजें जुड़ती गयीं जैसे सिंचाई के साधन, उर्वरक, कीटनाशक, ज्यादा उपज देने वाले बीज, मशीनें आदि। ये नयी लागतें किसान खुद तैयार नहीं कर सकता था। इन्हें तैयार करने वाले उद्योगों की एक पूरी कतार खड़ी हो गयी और इसके साथ ही किसान की आत्मनिर्भरता भी ख़त्म हो गयी। अब किसान अपनी जरूरत के हिसाब से फसलें नहीं उगा सकता था बल्कि उसे वे फसलें उगानी पड़ती जिनकी बाज़ार में ज्यादा मांग थी ताकि वह अपनी उपज बेचकर ज्यादा नकदी हासिल कर सके।

अब बाज़ार माल की खरीद बिक्री का साधारण स्थान नहीं था बल्कि वह जिंदगी के हर पहलू पर काबिज़ एक नयी ताकत बन गया था। अब समाज पर उसी की सत्ता कायम रह सकती थी जिसकी बाज़ार में सत्ता हो। पूंजीपति वर्ग की अगुवाई में सारी जनता ने मिलकर राजे-रजवाड़ों की सामंती सत्ता को उखाड़ फेंका और सत्ता की बागडोर पूंजीपति वर्ग के हाथ में आयी। किसान जोर-जबरदस्ती की लूट से तो आजाद हो गया लेकिन उससे भी खतरनाक, बाज़ार की लूट के चंगुल में फंस गया।

बाज़ार के विस्तार ने खेती की लागतों के मामले में तो किसान को दूसरों पर निर्भर बनाया ही है साथ ही साथ उसके और उसकी उपज के ग्राहकों के बीच कई बिचौलियों को भी बैठा दिया है। अब किसान व्यापारियों, कम्पनियों या मिलों को अपनी उपज बेचता है और वे उससे खाने-पीने की चीजें तैयार करके सारी जनता को बेचते हैं।

पुराने जमाने की जरूरत की खेती

की जगह आज एक बहुत बड़े कृषि खाद्य तंत्र ने ले ली है। इस तंत्र में खेती के साथ-साथ खेती में लगने वाली लागतों का उत्पादन, उपज की ढुलाई, उपज रखने के बड़े-बड़े एयर-कंडीशंड गोदाम, उपज से खाने-पीने की चीजें तैयार करने वाले उद्योग और उन्हें बेचने वाला खुदरा व्यापार शामिल है। इस पूरे तंत्र के अधिकांश हिस्से पर दुनिया की मुठ्ठी भर दैत्याकार कम्पनियों का कब्ज़ा है।

इस तंत्र में छोटे और मध्यम किसान उत्पादक से ज्यादा ग्राहक हैं। वे खेती की बीज, उर्वरक, कीटनाशक, बिजली, डीजल, मशीनरी जैसी भारी भरकम लागतों के तो ग्राहक हैं ही साथ ही साथ खेती की उपज से तैयार होने वाले मालों और जिंदगी की रोजमर्रा की जरूरत की दूसरी चीजों के भी ग्राहक हैं। उनकी जोत की पैदावार उनकी खेती और जीवन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए नाकाफी होती जा रही है। खेती की लागतें तैयार करने वाली कम्पनियां अपने उत्पादों का मनमाना दाम रखती हैं। सरकारें इनके साथ खड़ी हैं। मुठ्ठीभर बीज और कीटनाशकों की छोटी-छोटी शीशियों के दाम हजारों में है, लेकिन इन लागतों के बिना खेती करना असंभव है। किसान जेवर बेचें, पशु बेचें या कर्जा लें, उन्हें ये लागतें खरीदनी ही पड़ती हैं।

दूसरी ओर किसान को अपनी उपज का दाम तय करने का हक नहीं है। कम्पनियों के सामने उसकी हैसियत इतनी कमजोर है कि मौजूदा हालत में कोई ताकत उसे यह हक दिला भी नहीं सकती। सरकारों द्वारा तय किया जाने वाला न्यूनतम समर्थन मूल्य एक बेहूदा मजाक बनकर रह गया है। किसान के पास जमा बचत होने की हालत बहुत पहले ही खत्म हो चुकी है और वह बैंको या साहुकारों के कर्जों से खर्च चलाता है। ऐसे में कर्जे चुकाने और नयी फसल बोने के लिए उसे अपनी उपज तुरंत बेचनी पड़ती है। किसान के पास न तो दूर-दराज के बाजारों तक फसल को ढो कर ले जाने के साधन हैं और न ही उसके भंडारण की सुविधा। रोजमर्रा के अनुभव से हम देखते हैं कि जब भी किसान की उपज बाज़ार में आती है तो उसकी कीमतें जमीन पर तो क्या पाताल में चली जाती हैं। ऐसे में किसानों को ज्यादा पैदावार करने का दोषी ठहराया जाता है। जबकि सच्चाई यह है की उसी दौरान देश की आबादी का बड़ा हिस्सा इन उपजों के लिए तरस रहा होता है। उपज की कम कीमत का फायदा उठाकर भंडारण करने वाली कम्पनियां बेहद सस्ते दामों पर इस उपज को हथिया लेती हैं और बाद में मनमाने दामों पर बेचकर

किसान की चौतरफा लूट होती है। सबसे पहले उसे खेती की लागतों में लूटा जाता है। दूसरे, उपभोक्ता मालों के दाम लगातार बढ़ते जाने से बढ़ी महंगाई के जरिये किसान को लूटा जाता है। तीसरे, उसकी उपज सस्ते से सस्ते दामों पर हड़पी जाती है। चौथे, जब किसान की आय उसकी जीवन की जरूरतों को पूरा नहीं कर पाती तो मजबूरन उसे बैंको या साहूकारों से मोटे ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता है। उसकी पहले से ही नाकाफी आय में एक और चोर घुस जाता है। यही चक्र साल-दर-साल चलता रहता है और किसान के लिए आत्महत्या के अलावा सभी दरवाजे एक-एक कर बंद होते जाते हैं।

भारी मुनाफा कमाती हैं। हम रिलायंस, आईटीसी और अडानी जैसे कम्पनी समूहों के ऐसे भीमकाय एयर-कंडीशंड गोदामों को हाईवे के किनारे कहीं भी देख सकते हैं।

किसान की अधिकांश उपजें सीधे इस्तेमाल नहीं की जातीं। ये ब्रेड, बिस्कुट, चीनी, तेल, जेम, जैम जैसे हजारों तरह के उपभोक्ता मालों में कच्चे माल या मूल लागत के रूप में इस्तेमाल होती है। किसान की लागतों पर तो कम्पनियों का कब्ज़ा है और वे ही उनका दाम तय करती हैं। लेकिन इन मालों को तैयार करने वाले उद्योगों में किसानों का कोई दखल नहीं, इन पर भी पूरी तरह कम्पनियों का कब्ज़ा है। यहां से कम्पनियां जो मुनाफा लूटती हैं वह किसान की कल्पना से भी परे है। किसान से 15 रुपए किलो ख़रीदे गये गेहूं को पीसकर आई। टी। सी। जैसी कम्पनियां 31 रुपए किलो आटा बेचती हैं। अगर इसी आटे से ब्रेड या बिस्कुट बनाकर बेचें तो उसकी कीमत 100 रुपए किलो से भी ज्यादा बैठती है। 2 रुपए किलो ख़रीदे गये आलू का चिप्स बनाकर लेस जैसी कम्पनियां कई सौ रुपए किलो बेचती हैं। ऐसे उदाहरणों की सूची बेहद लम्बी है।

किसान की चौतरफा लूट होती है। सबसे पहले उसे खेती की लागतों में लूटा जाता है। दूसरे, उपभोक्ता मालों के दाम लगातार बढ़ते जाने से बढ़ी महंगाई के जरिये किसान को लूटा जाता है। तीसरे, उसकी उपज सस्ते से सस्ते दामों पर हड़पी जाती है। चौथे, जब किसान की आय उसकी जीवन की जरूरतों को पूरा नहीं कर पाती तो मजबूरन उसे बैंको या साहूकारों से मोटे ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता है। उसकी पहले से ही नाकाफी आय में एक और चोर घुस जाता है। यही चक्र साल-दर-साल चलता रहता है और किसान के लिए आत्महत्या के अलावा सभी दरवाजे एक-एक कर बंद होते जाते हैं।

दरअसल, कृषि-खाद्य तंत्र में फसल पैदा करना इस तंत्र का केवल एक हिस्सा है। इस तंत्र का सबसे लाजिमी हिस्सा होते हुए भी पूरे खाद्य तंत्र में इसका मूल्य योगदान मात्र 10 फीसदी है। 90 फीसदी हिस्से पर कृषि लागत तैयार करने वाली, भण्डारण और ढुलाई करने वाली, खाद्य प्रसंस्करण और खेती की उपजों को उपभोक्ता माल में बदलने वाली कंपनियों का कब्ज़ा है। आज खेती और किसान उर्वरक, कीटनाशक, डीजल जैसे लागतों को ब्रेड, बिस्कुट जैसे उपभोक्ता मालों में बदलने का जरिया भर है। किसान का न तो अपनी लागतों पर हक है और न ही अपनी उपज पर वह खेती तो करता है लेकिन खेती के बारे में कोई फैसला करने की हैसियत उसकी नहीं है। वह भले ही जमीन का मालिक हो लेकिन फसल तैयार करने से लेकर लोगों तक तैयार माल पहचाने की पूरी कड़ी में केवल एक मजदूर है।

कृषि खाद्य तंत्र पर काबिज कम्पनियों की चौतरफा लूट से जहां एक और कंपनियों के पास पूंजी का अम्बार जमा हुआ है वहीं दूसरी और किसानों की भारी आबादी का कंगालीकरण हुआ है, उनकी

खरीददारी की ताकत तेज़ी से घटी है। कम्पनियों के पास जमा पूंजी के अम्बार को फिर से कहीं लगाने के विकल्प लगातार घटते जा रहे हैं। किसानों समेत पूरी आबादी की खरीददारी की ताकत घटते जाने से कम्पनियों को उत्पादन घटाने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। यह संकट ऐसे मोड़ पर आकर फंस गया है यहां से इसके निकलने का एकमात्र रास्ता है किसानों की आमदनी का बढ़ना, लेकिन इस रास्ते पर जाने की शर्त है लागतों और उपभोक्ता मालों पर कंपनियों की कब्जेदारी और मुनाफे की लूट की जगह किसानों और जनता के अधिकारों और जरूरतों को स्थापित करना। निश्चय ही ऐसी कोई भी तबदीली दुनिया के मौजूदा शासकों को मंजूर नहीं हैं।

मशीनी युग के आने से बनी नयी दुनिया में यह मुमकिन नहीं है कि खेती बिना किसी तबदीली के पुराने ढर्रे पर ही चलती रहे। लेकिन यह तय किया जा सकता है कि ये तब्दीलियां मुठ्ठी भर पूंजीपतियों के हक़ में हो या किसानों की भारी आबादी और तमाम जनता के हक़ में। पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले चुके खेती के संकट के समाधान का जो रास्ता इन दोनों पुस्तकों में सुझाया गया है वह खेती के क्षेत्र में चीन के तजुर्बे से निकला है।

1949 में चीन में साम्राज्यवादी और सामंती ताकतों को हराकर किसानों और मजदूरों के मेल की सरकार सत्ता में आयी थी। इस नयी सरकार ने सत्ता संभालते ही सबसे पहले क्रान्तिकारी भूमि सुधार के काम को हाथ में लिया। बड़े-बड़े समान्त जो जमीन कब्जाए बैठे थे उसे छीनकर किसानों के बीच बांट दिया। समान जोत वाले किसानों के सहकार कायम किये। इसने चीनी किसानों की बेड़ियों को काट डाला और उनके सामने तरक्की का रास्ता खोल दिया। उन्होंने खेती का अंधाधुंध मशीनीकरण करने के बजाय शुरुआत में अपने किसानों के श्रम को ही खेती के विकास का आधार बनाया। अपने देश की खेती की हालत के मुताबिक खुद बीज, उर्वरक और मशीनें विकसित की। इस काम के लिए जरुरी कृषि विश्वविद्यालयों और शोध केन्द्रों को किसानों के नियंत्रण में देहातों में स्थापित किया। खेती से जुड़े छोटे उद्योगों को भी किसानों के साझे नियंत्रण में स्थापित किया। इससे किसानों की विशाल श्रमशक्ति के इस्तेमाल की दर बहुत ज्यादा बढ़ गयी जिससे उनकी साझी आमदनी में भारी बढ़ोत्तरी हुई।

जब खेती से आई यह बचत किसानों के पास इकठ्ठा हुई तो उन्होंने इसके एक छोटे हिस्से का इस्तेमाल अपने जीवन स्तर को बेहतर बनाने में और दूसरे बड़े हिस्से

खेती के संकट के समाधान के लिए आज अलग-अलग लोग तरह-तरह के उपाय सुझाते हैं। कोई जैविक खेती की बात करता है तो कोई फिर से हल-बैल के जमाने में लौट जाने का रास्ता दिखाता है। कोई किसानों को कामचोर और नपुंसक ठहरता है तो कोई उन्हें ज्यादा पैदावार करने का दोषी बताता है। कोई सफ़ेद मूसली और जटरोफा की खेती करने की सलाह देता है। इसके विपरीत यह पुस्तक साबित करती है कि आज का खेती का संकट लूट पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था का संकट है। और इस व्यवस्था में इस संकट का कोई समाधान नहीं हैं। यह पुस्तक यह भी साबित करती है कि इस पूँजीवादी व्यवस्था को ढहाकर इसकी जगह एक समतावादी और जनता के आपसी सहकार वाली व्यवस्था बनाकर ही इस संकट का सच्चा समाधान हो सकता है।

का इस्तेमाल खेती के लिए नयी-नयी लागतें तैयार करने में किया। इससे किसानों की विशाल आबादी ग्राहक के रूप में तैयार हुई जिसने पूरे देश की अर्थव्यवस्था की रफ़्तार को तेज कर दिया। खेती में नयी लागतों के इस्तेमाल ने पैदावार में भारी बढ़ोत्तरी की जिसके चलते दूसरे चक्र में किसानों की साझी आमदनी पहले के मुकाबले कहीं ज्यादा आयी। किसानों ने ऐसे कई चक्रों की आमदनी को इकठ्ठा करके उपभोक्ता माल तैयार करने वाले उद्योग भी अपने साझे मालिकाने में लगाने शुरू किये। धीरे-धीरे हुए खेती के मशीनीकरण से किसान आबादी का जो हिस्सा मुक्त हुआ था उसे अपने खेतों के साथ ही जुड़े इन नये उद्योगों में काम मिलता गया।

चीन का बराबरी पर आधारित यह निजाम भारत, पकिस्तान जैसे देशों से बिलकुल अलग था। इन देशों में कभी भी मुकम्मल भूमि सुधार का काम ही नहीं हुआ और किसानों का बहुत बड़ा हिस्सा भूमिहीन ही बना रहा। जिसके चलते बराबरी पर आधारित किसानों के सहकार भी कायम नही किये गये। शुरुआत से ही खेती को उद्योगों के लिए कच्चा माल तैयार करने वाली और उनके तैयार माल को लागत के रूप में खपाने वाली चीज़ ही समझा गया। इसी का नतीजा है की आज इन देशों की भारी भूमिहीन आबादी कंगालीकरण का शिकार है और छोटी जोत वाली किसानों की भारी आबादी उद्योगों, बैंको और साहूकारों की लूट से पस्त होकर आत्महत्या की और बढ़ने के लिए मजबूर हैं।

चीन की मेहनतकश जनता द्वारा शुरू किये गये महान प्रयोग की मंजिल एक ऐसा समाज बनाना था जहां देहात पर शहरों का, खेती पर उद्योग का और शारीरिक श्रम पर दिमागी श्रम का प्रभुत्व न हो। लेकिन 1980 के दशक में आयी देंग शियाओ पिंग की सरकार ने नयी उदारवादी नीतियों को अपनाकर चीनी जनता के इस महान प्रयोग की बालहत्या कर दी और चीन की खेती को भी उसी रस्ते पर धकेल दिया जहां किसान केवल कम्पनियों का कारिन्दा बन जाता है।

खेती के संकट के समाधान के लिए आज अलग-अलग लोग तरह-तरह के उपाय सुझाते हैं। कोई जैविक खेती की बात करता है तो कोई फिर से हल-बैल के जमाने में लौट जाने का रास्ता दिखाता है। कोई किसानों को कामचोर और नपुंसक ठहरता है तो कोई उन्हें ज्यादा पैदावार करने का दोषी बताता है। कोई सफ़ेद मूसली और जटरोफा की खेती करने की सलाह देता है। इसके विपरीत यह पुस्तक साबित करती है कि आज का खेती का संकट लूट पर टिकी पूंजीवादी व्यवस्था का संकट है। और इस व्यवस्था में इस संकट का कोई समाधान नहीं हैं। यह पुस्तक यह भी साबित करती है कि इस पूंजीवादी व्यवस्था को ढहाकर इसकी जगह एक समतावादी और जनता के आपसी सहकार वाली व्यवस्था बनाकर ही इस संकट का सच्चा समाधान हो सकता है।

सम्पर्क- 9582908960

प्रेम विवाह

□ डा. कामिनी साहिर

हमारे यहां मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा गया है, विदेशी भाषा में इसका रूपान्तर सामाजिक पशु है। दोनों मनुष्य की परिभाषा हेतु पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु विदेशी शब्द यथार्थ के अधिक निकट है, उसमें वास्तविकता और विवशता का सतर्क समन्वय है – पशुता प्राकृतिक है और सामाजिकता बुद्धिजन्य, परिस्थितिगत विवशता। हमारे शब्द में वास्तविकता अनावृत नहीं है, 'मनुष्य प्राणी-जगत् में सर्वश्रेष्ठ है' इस पूर्व धारणा से आंतकित है।

यही कारण है कि हमारे सब नियम, बन्धन, प्रथाएं, रीतियां विस्फोटक भूमि पर उस वातायान-रहित भवन के समान है जिसमें विस्फोट का विषैला लावा सदैव घुटन बन कर धार्मिक विश्वासों की छाया में रिसता रहता है परन्तु पश्चिम में स्थिति अधिक वैज्ञानिक और इससे भिन्न है-विस्फोट के क्षणों में वातायान स्वयंमेव खुल जाते है और क्षणिक घुटन को निकास का मार्ग मिल जाता है। वहां जब दो पशु किसी सामाजिक समझौते के लिए मिलते है तो उनकी दृष्टि मूल भूमि पर रहती है -- सामाजिक आवरण में पाशविक वृतियों के विस्फोट की सम्भावना की अवहेलना नहीं करते, जिससे सामाजिक प्राणी में व्यक्ति सदा सजग रहता है। हमारे यहां ऐसे समझौतों के समय दृष्टि आदर्शों के आकाश की ओर रहती है --पाशविक वृतियों के सहज अस्तित्व को हम भूल जाते है, जिससे व्यक्ति जीवन भर सामाजिक रूढ़ियों के बोझ तले पिसता और रिसता रहता है। स्थिति दोनों ओर निराशाजनक और चिरन्तन विडम्बनापूर्ण है। पारिवारिक और सामाजिक जीवन में वहां उच्छृल्खता तथा उद्दण्डता की सुलगती धूप है, जो फूलों का रस सोख लेती है और हमारे यहां घुटन का कोहरा है, जिसमें फूलों की आंखों से सदा ओस ही छलकती रहती है।

सामाजिक पशुओं के परस्पर सम्बन्धों में सर्वोपरि सम्बन्ध को सामाजिक शब्दावली में विवाह और मनोविज्ञान-शास्त्र में 'काम-तोषक' कहा जाता है। प्रस्तुत साहित्यिक विश्लेषण में हम यदि कोई साहित्यिक नाम देना चाहें तो निस्संकोच हो कर 'बखिया-उधेड़क' बन्धन कह सकते है। उच्छृंखलता और उद्दण्डता के नव तथा विस्तृत लोक में सम्बन्ध के अपने ही और घुटन की संकीर्ण गलियों में सम्बन्धियों के बखिए उधेड़ते है --वहां व्यक्ति प्रबल है, इसलिए परिवार टूटते है और यहां परिवार सशक्त है, इसलिए व्यक्ति टूटते है। इस टूटने के क्रम को न

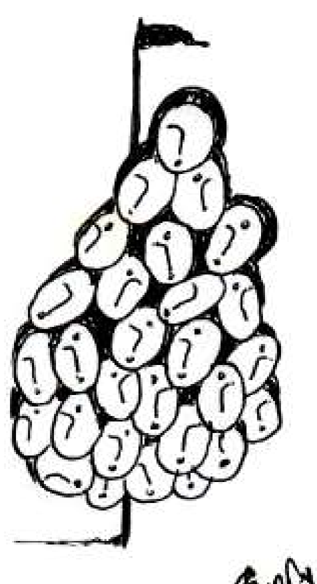

वहा क प्रम-ववाह राक सक ह आर न ही हमारे यहां के स्वयंवर अथवा घूंघट-धारी रूढ़िग्रस्त विवाह।

आज स्वयंवर का युग है न ही आज घूंघट-धारी विवाह युवा-वर्ग को प्रिय है। दोनों की दुकानें उठ गई है। सब ओर प्रेमविवाह की ही मांग है।

एक युवा वर्ग तो ऐसा है जो प्रेम-विवाह को – 'तानाशाह के चेहरे पर समाजवाद का मुखौटा' कह कर उससे भी दूर भागने लगा है। यहां तक कि घूंघट-धारी-विवाह के विरोधी युवक-युवतियां प्रेम-विवाह को भी एक मनोवैज्ञानिक धोखा समझ कर अविवाहित रहने का ही सकंल्प लेने लगे है। परन्तु यह प्रकृति को झुठलाना है।

यथार्थ कटु अवश्य होता है परन्तु किसी मधुर आदर्श की लालसा में उस कटुता की अवेहलना करने से एक चिरन्तन कटुता के प्रवेश के लिए जीवन का कोई अनजाना द्वार खुल जाता है। एक बार किसी गोष्ठी में एक विदेशी यथार्थवादी ने विश्व भर की श्रीमतियों और श्रीमानों को आंख और कान को खोल कर एक कड़वी गोली निगल जाने की अनुमति दी थी – उनका सुझाव था कि एक बार यदि सब श्रीमतियों और श्रीमानों को सामाजिक को श्रृंखला से मुक्त कर दिया जाए और फिर एक प्रश्न पूछा जाए –

'क्यों श्रीमान जी, क्या आप अपनी श्रीमती से पुन:विवाह करना पसन्द करेंगे?'

'क्यों मैडम, क्या आप अपने मिया को पुन:वरण करना चाहेगी?'--तो बिना किसी अपवाद के दोनों ओर प्रतिशोध चीत्कार कर उठेगा – नहीं –नहीं – नहीं।

यही युग्म विवाह के पूर्व सपनों के जंगल में लैला और मजनू के समान खाक छाना करते थे। कोई छोटा बच्चा किसी दुकान पर एक खिलौना देखता है तो उसे लेने के लिए मचल उठता है, बाज़ार के मध्य में लेट जाता है। परन्तु कौन नहीं जानता कि दो दिन के पश्चात् वहीं खिलौना बच्चे के हाथों अंग-भंग हो कर कूड़े में पड़ा रहता है। यदि आर्थिक या किसी अन्य विवशता के कारण बच्चे के हाथ उस खिलौने तक नहीं पहुंच सकते जिस तक उसकी आंख सहज ही पहुंच चुकी है तो सपनों के लोक में उसकी कल्पना खिलौने का निर्माण करती है और भावना के आंसू उसे श्रृंगारते हैं। यह बच्चों का खेल समझ कर टालने की बात नहीं है, क्योंकि बच्चे के शारीरिक विकास के साथ-साथ वृत्तियां भी विकसित होती है।

हमारा दुर्भाग्य है कि हम कूड़े के अंग-भंग खिलौने में तुतलाते यथार्थ को न देख कर काव्य के मादक प्रेम को प्रमाण मान लेते है । काव्य का प्रेम उस भावुक-हृदय की कल्पना का प्रसार है जिसका हाथ

विवशता ग्रस्त है और आंख बहुत दूर पड़े दुकान के खिलौने पर है – न तो दृष्टि के स्पर्श से दुकान का खिलौना मैला होता है और न ही खिलौने के उस सूक्ष्म प्रतिबिम्ब को समय की कोई आंधी मैला अथवा पुराना कर सकती है, जिसे अपने में समेट कर दृष्टि स्वयं भी सिमट गई है। परन्तु प्रेम-विवाह में आंख और हाथ दोनों सांझी हैं और हाथ के स्पर्श से वस्तु मैली होती है तथा समय के प्रहार स्थूल को नष्ट करते है। प्रेम सपना है और विवाह स्थूल जीवन की एक समाजीकृत प्राकृतिक आवश्यकता। आंख खुलने पर जब हम अपने आप को कठोर धरातल पर देखते है तो सपना केवल टूट ही नहीं जाता, वरन् उसके टुकड़े यथार्थ की भूमि पर हमारे हाथ पांव को छलनी भी कर देते है। हम काव्य की भाषा से प्रेम का अभिनन्दन और समर्पण का अभिनय करते है परन्तु व्यावहारिक भूमि पर अधिकारों की मांग करने लगते हैं।

प्रेम की आवश्यकता विवाह के पश्चात् सुखद जीवन के लिए आवश्यक है परन्तु हम प्रेम पहले कर लेते है और विवाह बाद में। प्रेम आकर्षण है और विवाह प्राप्ति। प्राप्य के प्रति प्राप्ति के क्षणों में यदि आकर्षण आरम्भ हो तो उसके भावी जीवन तथा विकास को चिरंजीव होने का आशीर्वाद भी दिया जा सकता है और आशा भी की जा सकती है। परन्तु यदि उसका बाल्यकाल और यौवन प्राप्ति से पूर्व ही चुक जाए तो वह आशीर्वाद पाकर भी दम तोड़ बैठता है और आकर्षण के आंख बन्द करते ही तलाक के गुरू हथौड़े से मधुर बन्धन की कोमल कडियां तोड़ फोड़ दी जाती है।

आज प्रेम सूत्रधार है और विवाह मूल नाटक जिस के सम्पन्न होते ही रंगमंच पर धूल उड़ने लगती है। विवाह से पूर्व प्रेम एक लालसा है, जिससे 'अहं' विकृत होता है। विवाह के पश्चात् प्रेम एक कर्त्तव्य है, जिससे 'अहं' को सन्तुलित रख कर हाथ में हाथ डाल कर चलने की प्रेरणा मिलती है। प्रेमियों की मुलाकातों में न तो विश्व शान्ति की समस्या पर कोई वाद-विवाद होता है और न ही परीक्षा की कोई चिन्ता वहां हस्तक्षेप कर सकती है।

विभागाध्यक्ष(हिन्दी), खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन सिविल लाईन्ज, लुधियाना

सीक्रेट सुपरस्टार मुखर अभिव्यक्ति है महिलाओं के डर की

□ किशु गुप्ता

समस्त बन्धनों को तोडकर अपने सपनों को सच करने की कहानी है सीक्रेट सुपरस्टार। समर्पित है हर औरत को व हर मां को जो जीवन में कुछ करने की उमंग अपने मन में रखती है। मां-बेटी के रिश्ते को लेकर बनी फिल्म बेहद खास है। कहानी है सपनों की, त्याग की, समर्पण व संघर्ष की। आमिर खान की फिल्म में कोई न कोई संदेश छिपा होता है। यह फिल्म मुखर अभिव्यक्ति है महिलाओं के डर की जो उनके दिलों में बस गया है। घरेलू महिलाएं जो इस माहौल से बाहर तो आना चाहती है, पर आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर हुए बिना व्यक्तिगत स्वतंत्रता हासिल नहीं कर सकती।

बडोदरा के एक मिडल क्लास परिवार की लडकी इंशिया(जायरा वसीम) सिंगर बनना चाहती है पर उसके पिता का उसके घर में बहुत खौफ है पिता चाहता है इंशिया अपने सिंगिग के सपने को छोड़कर शादी कर घर बसाए। इंशिया अपने सपनों के साथ मुक्त गगन में उड़ना चाहती है। इंशिया के अब्बा उसकी अम्मी को प्रताड़ित करते हैं, लेकिन इंशिया की मां (मेहर विज) घुट-घुट कर रहने के बावजूद भी अपने बच्चों के हर एक सपने को पूरा करने में उनकी मदद करती है।

महिलाएं इस उत्पीडन की हैबिच्युल हो चुकी हैं। वे चाहकर भी इससे बाहर नहीं निकल पाती। इंशिया जब अपनी मां को अपने अब्बा से तलाक लेने की बात कहती है तो उसकी अम्मी नाराज होकर कहती है कहां जाएगें हम? कौन तुम्हारी स्कूल की फीस भरेगा?

लेकिन इंशिया सोचती है उसकी मां डरपोक है और वह अपनी आजादी के लिए कुछ नहीं करना चाहती। जब उसे पता लगता है कि उसके अब्बा उसे पेट में ही मारना चाहते थे और उसकी अम्मी ने उसको भागकर बचाया था तब उसे अहसास होता है कि मां ही असली सुपरस्टार है। इंशिया की मां ही सच में फ़िल्म की सीक्रेट-सुपरस्टार है। वह अपने पति की जेब से पैसे चुराकर इंशिया के लिए गिटार लाती है, अपने गहने बेचकर लेपटॉप खरीदती है।

औरतों की स्वतन्त्रता को क्षति पहुंचाने का कारक बुर्के को आजादी व सपनों को पूरा करने का जरिया बना लेती है। इंशिया को संगीत से दूर रहने का आदेश था तो उसकी अम्मी उसको आईडिया देती है कि बुर्का पहनकर गाना गा। इंशिया इस बात को मानकर वीडियो बनाती है और यु-ट्यूब पर अपलोड करती है। उसकी वीडियो को लाखों लोग पसन्द करते हैं और संगीतकार शक्ति कुमार (आमिर खान) उसके गाने को पसन्द करते हैं और उसको अपनी फिल्म के लिए गाना गाने का ऑफर देते है, जिसे वह पहले स्वीकार नही करती, पर अपनी मां की मदद के लिए वह शक्ति कुमार से बात करती है और उसका दोस्त चिन्तन उसकी मदद करता है। चिन्तन का करैक्टर फिल्म में स्कूली बच्चों के मनोविश्लेषणात्मक नजरिए को स्पष्ट करता है।

कहानी में नया मोड़ तब आता है जब इंशिया सब कुछ जानकर मां के फैसले से समर्थन करती है और अपने सपनों का गला घोटकर पिता के साथ दुबई जाने को तैयार हो जाती है। पर वहां मां की आत्मा का जागृत होती है अपने पति को एयरपोर्ट पर तलाक के पेपर साईन करके देती है और मर्दवादी सोच पर करारा थप्पड़ जड़ देती है और सभी बन्धनों को तोड़ मुक्त होकर अपनी बेटी के अवार्ड-शो में जाती है। मां को आजादी की और कदम रखते देख, इंशिया भी बुर्का उतार फैंक देती है और अपने सीक्रेट सुपरस्टार की पहचान सबके सामने लाती है। बुर्का उतारना प्रतीक बन जाता है औरतों की आजादी व उनके जीवन को जीने की एक नई राह दिखलाने का।

सम्पर्क- 8199053970

लेणे के देणे

लेखक : चिनवा अचेबे अनु. राजेंद्र सिंह

विश्व साहित्य की प्रसिद्ध रचना को हरियाणवी में अनुवाद करके प्रस्तुत करने के लिए यह एक स्थायी स्तम्भ शुरू किया है। इसमें पाठक विश्व साहित्य से परिचित तो होंगे ही, साथ ही हरियाणवी भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता का पता भी चलेगा। उम्मीद है कि इस प्रयास में हरियाणवी भाषा का स्वरूप भी निखरेगा। आप भी विश्व साहित्य की प्रसिद्ध रचना का हरियाणवी भाषा में अनुवाद भेज सकते हैं।

चिनवा अचेबे की रचनाओं ने विश्व के साहित्य के लेखन, अध्ययन व अध्यापन को प्रभावित किया है। प्रस्तुत कहानी अचेबे की कलम से निकली एक इग्बो लोक कथा का हरियाणवी अनुवाद है जिसको 'थिंग्स फॉल अपार्ट' से लिया गया है। इसमें चालाक कछुए और भोले-भाले पक्षियों के माध्यम से चालाक लोग वाक्चातुर्य से किस तरह से सीधे-सादे लोगों को ठगते व शोषण करते हैं इसको उदघाटित करने की कोशिश की और लोग किस तरह से प्रतिरोध प्रकट करते हैं - सं.

पूरे कबीलै म्हं अकोंको की हैसीयत का अन्ताजा उसकै घर की श्यान तै ए लाया जा सकै था। घर कै चौगरदै लाल माट्टी की आच्छी मोटी-तगड़ी कांध थी जिस म्हं एक ए बारणा था। बारणे कै धोरे ए अकोंको की कोठड़ी (ओबी) थी। आंगण में तीन अधगोळिया कोठड़ी ओर थी जिनम्हं उसकी तीनों घरआळी अपणे-अपणे बाळकां गैल रह्वैं थी। दूसरे पासै लाल कांध के सहारै अनाज की कोठी बणा राखी थी जिसमे बारां मीह्ने नाज भर्‌या रये करदा। रोज की तरियां तीनों घर आळी अपणी अपणी रोटी बणा कै अकोंको की कोठड़ी म्हं धर कै चली गई। तीनों थाळी खा कै अकोंको थोड़ा सुस्ताण खातर कांध के सहारै कड़ लाकै बैठग्या। अपणी गोथळी खोल कै उसनै थोड़ा सा नसवार काढ्या जो सिळा होकै थोड़ा सा करड़ा होर्‌या था। उसने बेरा था के औकेकी के बणाए नसवार म्हं खोट रह्वै ए रह्वै। उस टैम अकोंको कै इदिगो का बणाया होया नसवार याद आया जिसका पूरे गाम में कोए मुकाबला नीं था। लेकिन ईब इदिगो बढ़ेरा हो लिया था अर वा काफी टैम तै खटोली मैं ए पड़्या था।

अँधेरा हो लिया था। तीनों कोठड़ियां म्हं तै बोलण अर गाण की मंधम-मंधम सी अवाज आवै थी। तीनों बीरबानी अर उनके बाळक अपणी-अपणी कोठड़ियां में बारी-बारी कहाणी सुणैं अर सुणावैं थे। इक्वेफी अर उसकी बेटी इजिन्मा दरी बिछा कै बिसाळै में बैठी थी। ईब कहाणी सुणाण की बारी मां की थी। उसने कहाणी सुणाणी सुरु करी :

'एक बर की बात है अकाश मैं रहण आळे आदमियां नै भण्डारा लाया था। अर उन्नै धरती की सारी चिड़ियां तै बी न्योंदा दे दिया। सारी चिड़ियां बोह्त खुस होई अर जौर-सौर तै भंडारै आळे दिन की तैयारी में जुटगी। उननें गात पै लाल चन्दन लाया अर सुथरे-सुथरे चितर बणाए। एक कच्छू नै सजी-धजी चिड़िया देखी अर अंताजा ला लिया के माजरा के था। वो बोह्त ए घणा चलाक था। पंछी अर जनोरां की कोए बी बात उसतै छानी या ढ़की-छुपी नीं थी। न्योंदे की बात सुणदे ही उसकी लाळ टपकण लागगी। उन दिनों काळ बी पड़्या होया था अर दो मिहन्यां तै कच्छू ने छिक कै खाया बी कोनी था। उसका गात खोळ म्हं सुक्खी डढैण की तरां बाज्जणा सुरु होग्या था। अकाश आळे न्योंदे खातर कच्छू नै जुगत भिड़ाणी सुरु कर दी.'

'पर मां कच्छुए कै पांख तो कोनी थे,' इजिन्मा नै पुच्छ्या।

चिनवा अचेबे

(1930-2013)

नाइजीरियन उपन्यासकार, कवि, कहानीकार, निबंधकार, समीक्षक, प्रोफेसर तथा एक राजनीतिक एवं सामाजिक टिप्पणीकार थे। पाँच उपन्यासों एवं दो कहानी संग्रहों के अतिरिक्त अचेबे द्वारा लिखित कई कविता एवं निबन्ध संग्रह भी प्रकाशित हुए। 'थिंग्स फॉल अपार्ट' को अचेबे की सर्वोत्तम कृति माना जाता है जिसमें उन्होंने इग्बो समुदाय के पूर्व-औपनिवेशिक एवं औपनिवेशिक जीवन का मार्मिक एवं जीवंत वर्णन किया है। लेखक के तौर पर अचेबे का एक उद्देश्य मानवता को अफरीकी कबीलाई जीवन के विभिन्न पहलुओं से अवगत कराना भी था जिसके बारे में पूरे विश्व में अनेक भ्रांतियां फैलाई गयी थी।

वर्ष 2007 में अचेबे को 'मैन बूकर इंटरनेशनल प्राइज' मिला था। साहित्य में 'नोबेल प्राइज' के लिए भी इनका पांच बार नामकरण हुआ था। इनको 'नाइजीरियन नेशनल मेरिट अवार्ड' से भी नवाजा गया था जो की बौद्धिक सम्पदा के लिए नाइजीरिया का सर्वोत्तम सम्मान है।

अपनी लघु कथाओं एवं लोक कथाओं से अचेबे यह सिद्ध करते हैं कि औपनिवेशिक ताकतों द्वारा प्रचारित अवधारणाओं एवं पूर्वाग्रहों के विपरीत अफ्रीका का अपना एक रचनात्मक एवं गौरवशाली सांस्कृतिक इतिहास रहा है। मुख्यधारा की विशिष्ट साहित्यिक रचनाओं के साथ-साथ अचेबे ने साहित्य के हाशिये पर बहने वाली लोकधारा में भी रचनात्मक योगदान दिया है

'इसी बेसब्री ना होवै,' मां बोली। 'या बस्स एक कहाणी है। कच्छुए के पांख तो नीं थे पर वा चिड़ियां लवै पहोंचग्या अर न्यू बोल्या के वो बी जीम्मण खातर अकाश में जाणा चाहवै।

'उसकी बात सुणके चिड़ियां बोली, 'हाम तन्नै बोह्त आच्छी तरां जाणैं। तेरे जिसा चलाक अर बेगैरत जीव इस धरती पै कोनी। जै हाम तन्नै ले बी जावां तो तों चलाकी दिखाण तै हाटै कोनी।'

'थाम मन्नै जाणदी कोनी', कछुआ बोल्या।' ईब मैं पहलां आळा कोनी रह्या। ईब मन्नै बेरा लागग्या के जो दूसर्यां के राह म्हं कांडे बोवै नीं, ओ असल मैं आपणे राह म्हं ए कांडे बिछावै।'

'कच्छू था बड़ा मिठबोला। थोड़ी सी हांण में यू सबकै जचगी के इब यो सुधरग्या। उन्नें गैले लेजण का फैसला होग्या। हरेक चिड़ियां नै उसतै एक एक पांख उधारा दे दिया। यें जोड़कै कच्छुए नै दो पांख बणा लिए। आख़िरकार न्योंदे का दिन बी आग्या। सारे एक जगहां कट्ठे होए अर कच्छुआ सब तै पहलम पहुँचा। सबनै कट्ठी उडारी भरी। कछुआ चिड़ियां के बीच मैं उड़के घणा ए खुस था अर सब तै फालतू बोल्लै था। वो कड़कै पै कड़कै सुणाण लाग रह्या था। थोड़ी सी हाण मैं ए उसकी बातां तै खुस होकै सारे पंछियां ने उसे भण्डारे खातर अपणा बड़सर मान लिया।

'जब्ब वो उड़दे जाण लाग रे थे तो कच्छुआ बोल्या, 'एक बड़ी जरूरी बात बताऊं जिसका सबनै ख्याल राखणा है। एक रिवाज होया करै के जब्ब किसे नै इतने बड़े भण्डारे का न्योंदा मिलै तो इस मोकै खातर उसनै अपणा एक नया नाम धरणा पड़ै। अकाश मैं म्हारे जो मेजबान हैं, ओं बी चावेंगे के हाम इस रिवाज नै निबावैं।'

'किसे बी चिड़िया नै इस रिवाज के बारे मैं सुण्या नीं था। सबनै बेरा था की कच्छुआ चाहे कितना ए बुरा क्यूं न हो, उसने घाट-घाट का पाणी पी राख्या था। उसनै अलग-अलग लोगां अर जगहां के रीति-रिवाजां का अच्छा-खासा ग्यान था। हरेक चिड़िया नै अपणा एक नवा नाम सोच लिया। कच्छुए नै बी सबतै आपणा नवा नाम बताया। उसका नवा नाम था 'थाम सब'।

'ठीक बख्त पै सारे भण्डारे आळी जगहां पहुंचग्ये। आगले बी उननै देख कै जमा राज्जी होगे। कच्छुआ सबतै आगै था। उसनै अपणे रंगे होए पांख ठाकै न्योंदा देण खातर मेजबानां का सुक्रिया कर्‌या। उस मौके पै कच्छुए नै जो कमाल का भासण दिया, उसनै सुणकै सारी चिड़िया गदगद होगी। वो सोचैं थी के कछुए नै गैले ल्याके बोह्त बढिया कर्‌या। कछुआ दिक्खण में सबतै न्यारा था। मेजबानां ने सोच्या के वो जरूर उन सबका राज्जा होगा।

'ऐसे-ऐसे पकवान सजाये के कच्छुए नै वो कदे सुपनै मैं बी कोनी देखे थे। गरम-गरम सोरबा उनें बासणां में आया जिनमें वो रांध्या था। मास-मच्छी की परांत पै परांत अड़री थी। दुनिया-जहान के पकवान थे। ताड़ की दारु के कई-कई घड़े भरे थे। जब्ब सारा खाणा लगकै तैयार होया तो मेजबानां म्हं तै एक बुजुर्ग नै सारे पकवान बारी-बारी चाख के देखे। फेर उसनै सारे पंछी खाणे पै बलाये। ऐन उसे टेम कछुआ कुदाक मारकै अपणे पैरां पै खड़्या होग्या अर आग्ल्यां के उस बुजुर्ग तै पुच्छ्या,

'यें पकवान थामनै किस खातर बणाए हैं ?'

'बूढ़े ने उत्तर दिया, 'थाम सब खातर।'

'ईब कच्छुआ गैले आये पंछियां कानी मुड़्या अर बोल्या, 'थारै सबकै याद होगा के मेरा नाम 'थाम सब' है। इस जगहां एक रिवाज यु बी है के सबतै पहले खाणा बड़सर को खिलाया जावै। थारी बारी मेरे पाछै आवैगी।'

'कच्छुआ खांदा रह्या, खांदा रह्या। चिड़ियां बेचारी खड़ी-खड़ी लखांदी रही। अकाश के लोगों नै सोच्या के धरती पै शायद यू ए रिवाज हो के सारा खाणा सिर्फ राजा ए खावेगा। कच्छुए नै सबतै बढ़िया पकवान खाये। फेर दो माट दारू के पीये। वो खाण तै जब हट्या जब्ब वो फूल के पाटण नै होग्या अर चालण की बी आसंग ना रही। आखिर मैं चिड़ियां बचे होये खाणे पै कट्ठी होइ अर फर्स पै पड़ी हांडियां मैं चोंच मारण लाग्गी। कईयां नै तो इतना जळेवा आया के उन्होंने भूखे ही वापस धरती पै जाण की सोच ली। लेकिन जाणे तै पहलां उननें कच्छुए को उधार दिया आपणे पांख उल्टे ले लिए।

'इब कछुए का पेट तो ठाडा भर्‌या था लेकिन उस धोरै घरां जाण खातर पांख कोनी थे। उसने चिड़ियां तै उसके घर सन्देशा देण की कही लेकिन सारी नाटगी। झुण्ड म्हं एक तोता बी था जो बोहत ए गुस्से में था। लेकिन फेर बेरा नी के होया के उसका दिमाक बदलग्या अर उसनै कच्छुए के घरां संदेशा पहुँचाण की बात ओट ली।

'कछुआ न्यू बोल्या, 'मेरी घरआळी नै न्यू कहियो के वा घर का सारा नरम समान बाहर आंगण में काढ़ दे, ताकि जब्ब मैं उप्पर तै नीचे धरती पै छलांग मारूं तो टूट-फूट कम तै कम होवै।'

'तोते नै वादा कर्‌या अर उड़कै कछुए कै घर पहुँचग्या। उसने कच्छुए की घरआळी तै कया के वा घर का सारा करड़ा अर पैना समान ज्यूकर खुरपी, बर्छी, भाला, बन्दूक, और तो और तोप बी, बाहर काढ़ कै आंगण म्हं धर दे। कच्छुए नै न्यूं तो दिक्खे था के समान बाहर काढ़ दिया, पर वो इतनी ऊंचै था के समान नै पिछाण नी सके था। आंगन मैं ढेर लगणे पै कच्छुए नै उप्पर तै छलांग मारी। वो कई ए देर पड़दा रह्या, पड़दा रह्या। जब्ब वो आंगन मैं आके पड़्या तो गोळा सा पाट्या। घणी ए दूर तक चीख पकार गई।

'कच्छुआ तो मर ए गया होगा ?,' इजिन्मा बोली।

'ना ना, मर्‌या तो कोनी', इक्वेफी नै जबाब दिया।'लेकिन उसकी खोळ के टुकड़े-टुकड़े होगे। ओठै लोवै-धोरै ए नामी-गिरामी बैद रह्या करदा। कछुए की घरआळी नै वा बैद बुलाया। बैद नै एक एक करकै कछुए के खोळ के सारे टुकड़े कट्ठे करके आपस म्हं चेप दिये। यू ए कारण है के आज बी कच्छओं का खोळ खुरदरा है अर उसमें लकीर-ए-लकीर हैं।

'इस कहाणी म्हं कोए गीत तो कोनी आया!,' इजिन्मा नै कह्या।

'ना,' इक्वेफी बोली।'मैं तनै गीत आळी कोए ओर कहाणी सुनाऊंगी, लेकिन ईब कहाणी सुणाण की बारी तेरी ए।'

सम्पर्क- अनुवादक-राजेन्द्र सिंह, जीन्द-9729751250

जय सिंह खानक

सदियों से हम पिसते आये, ना दिया सम्मान किसेनै
नीच, गलीच, मलीच कहं, ना समझे इंसान किसेनै

दलित होंणके के के दुख, यो हाल सुणादुं सारा
किते भी ना मिलती इज्जत, हर जगह गया फटकारा
मन्दिर, मस्जिद मै नां घुसण दिये, या कोणसा दोष हमारा
इक्कीसवीं सदी आगी, आज भी म्हारा कुआं न्यारा
सदियों से फिरै मारा-मारा ना दी पहचान किसेनै

नऐ-नऐ नाम रोज मिलैं, जो गिनती मैं ना आवैं
सुण-लुण के दिल छलणी होज्या, मरहम भी ना पावैं
अपणा रोब बढ़ावण नै, ये चुटकले रोज बणावैं
चीर कलेजा पार लिकड़ज्या, शब्दां के तीर चलावैं
हम मशोक कालजा चुप रहज्यावा, ना देवां उल्टा ब्यान किसेनै

पढ़ण लिखण का अधिकार दिया ना, एके अधिकार दिया हमनै
पैर पकड़ म्हारी सेवा करल्यो, एक शुद्र नाम दिया हमनै
म्हारे खेतां मैं करो मजदूरी, बस योहे काम दिया हमनै
मल-गोबर की करो सफाई, और झाड़ू थमा दिया हमनै
यो कोणसा जुर्म हामनै, ना करा बख्यान किसने

किसे चीज मैं सीर नहीं म्हारा, ना कोई हिस्सेदारी
दर-दर ठोकर खाते फिररे, फेर ना मजदूरी थ्यारी
लोग कहैं इन्हें देश लूट लिया, ना म्हारी समझ मैं आरी
महिने मैं दस दिन काम मिलै, बस या पूंजी सै म्हारी
या आधी दुनियां ढ़ंग के खारी, ना कही शैतान किसेनै

सदियों तक गुलाम रहे, म्हारा रहा नरक मैं जीणां
बिना दुध की चाय पीवैं बालक, यो म्हारा खाणा-पीणां
सुके टिकड़ै मिर्च घणी, ना देखा दूध और घीणां
365 लगी बितारी और, शरीर का होग्या झीणां
यो जीणा के जीणा जयसिंह, ना समझे अरमान किसेनै

सम्पर्क-9813784836

रामेश्वर गुप्ता

विकास होग्या बहुत खुशी, गामां की तस्वीर बदलगी
भाईचारा भी टूट्या सै, अब माणस की तासीर बदलगी

पक्की गलियां पक्की नाली, पक्के बणै मकान अड़ै
प्रेम के बन्धन कच्चे पड़गे, कच्चे पड़े इंसान अड़ै
वो सौंधी खशबू गाम की, होए रिश्ते लहू लुहान अड़ै
फैशन की अंधी दौड़ का, घर-घर म्हं घमसान अड़ै
दिन-धौळी लिफाफे म्हं, आजादी की तहरीर बदलगी

इकठ्ठे हो कै बैठां थे सब, हिन्दू-सिक्ख, ईसाई
टैलीविजन आ गया ईब, घर-घर म्हां सीम बणाई
अपणे घर म्हं सिमट गए हम, या इसी क्रांति आई
गलियां सूनी होगी गामां की, होयी सूनी बैठक-थ्याई
हम नै एक बणाणे वाळी, वा साझा अर सीर बदल गी

किस्से कहाणी सुण-सुण कै, अपणे गम भुलाज्यां थे
दुख बांट कै आपस म्हं, दूजे के सुख पाज्यां थे
सांझ ढले सब के सुख-दुख, थ्याई के म्हं आज्यां थे
रळ-मिल कै बतलावैं थै सब, सही रास्ते ठ्याज्यां थे
अपणी होई पीड़ सभी की, सांझे वाळी पीड़ बदलगी

विकास तै पहल्यां भाईचारे की, हो थी कला सवाई
इक-दूजे की मदद करैं थे, ना थी ऐसी हाथा पाई
गाम की बेटी सबकी बेटी, कोई बुआ, चाची, ताई
'रामेश्वर' आपस म्हं लड़ रे, ईब रोज यां भाई-भाई
विकास गेल्या गामां म्हं, प्यार की तदबीर बदलगी

करनाल जिले के सिधपुर गांव में साधारण दुकानदार के घर 9 मई 1951 को जन्म। हरियाणा शिक्षा विभाग में शिक्षक रहे। साक्षारता अभियान में सक्रिय भागीदारी। च्यौंद कसूती (रागनी संग्रह), डंगवारा (रागनी संग्रह), दंगे पागल होते हैं (कविता संग्रह), त्रिवेणी(दोहे, कुण्डलियां, हरियाणवी गजल) रचनाएं प्रकाशित।

जाट कहवै , सुण जाटनी

□ राजेन्द्र गौतम

'जाट कहवै सुण जाटणी' हरियाणवी उपन्यासों की परम्परा को नया मोड़ देता है। कहने की अपेक्षा मुझे यह कहना ज्यादा सार्थक लगता है कि यह उपन्यास हरियाणवी उपन्यास-साहित्य में एक धमाका करता है। 'मोड़ देना' इसलिए सार्थक नहीं है क्योंकि हरियाणवी उपन्यासों की कोई बहुत लम्बी परम्परा है ही नहीं। राजाराम शास्त्री से लेकर सन् 2017 तक के पचास वर्षों में हरियाणवी उपन्यासों की संख्या आराम से उंगलियों पर गिनी जा सकती है। उस स्थिति में जब हरियाणा में लिखे गए खड़ी बोली साहित्य का भी का बहुत ही थोडा अंश प्रांतीय सीमाओं से बाहर स्वीकृति पा सका है, यह एक विस्मित करने वाला तथ्य है कि हरियाणवी में रचित यह उपन्यास हिन्दी के किसी भी सामयिक उपन्यास से टक्कर ले सकता है।

यद्यपि यह उपन्यास 'राग दरबारी' का अनुकरण नहीं है पर इसको पढ़ते समय 'राग दरबारी' का स्मरण बार-बार आता है। सांस्थानिक भ्रष्टता पर नश्तर लगाने का जो काम सातवें दशक में 'राग दरबारी' ने किया था, आज उसकी जरूरत और भी ज्यादा हो गयी है क्योंकि तब जो बीमारी शुरू हुई थी, उसके प्रति हमारे महान् राष्ट्र ने 'निप द ईविल इन द बड' के फिजूल के फार्मूले को नहीं अपनाया अपितु उसको 'दूधों नहाओ पूतों फलो' का आशीर्वाद दे दिया। परिणाम यह हुआ कि आज हम भ्रष्टाचार की सर्वदलीय प्रतियोगिता देख रहे हैं। किस की कमीज ज्यादा सफ़ेद है, इसकी अहमियत नहीं है। अब तो तर्क यह है कि आप जब महापापी हैं तो आपको हमें पापी कहने का अधिकार नहीं है। ऐसे भयानक समय में 'जाट कहवै सुण जाटणी' एक ऐसे जादुई यथार्थ को बुनता है जो हमें कचोटता भी और हालात के प्रति सचेत भी करता है लेकिन साथ क्रूर सत्ता के समक्ष आम जन की असहायता को रेखांकित करता है।

ग्लोकल और लोकल की फ्रेज इस उपन्यास के साथ विशेष रूप से जुडी है क्योंकि इसमें चित्रित समस्या का आकार अखिल भारतीय है पर उसको जिस भाषिक और शैल्पिक कलेवर में ढाला गया है उसका फलेवर पूरी तरह हरियाणवी है। हरियाणवी का शायद ही कोई ऐसा मुहावरा या कहावत हो जिसका समावेश इस उपन्यास में नहीं हुआ है।

मेरी व्यक्तिगत राय है कि जिस मानक हरियाणवी का प्रयोग इस उपन्यास में हुआ है, रागनी साहित्य को छोड़ कर उसके दर्शन हरियाणवी लेखकों में कम ही होते है। मैकलुहान ने 'मीडियम इज़ द मेसेज' यद्यपि थोड़े भिन्न सन्दर्भ में कहा है पर मेरी निश्चित मान्यता है कि साहित्य में केवल सन्देश कभी महत्त्वपूर्ण नहीं होता। रचना को रचना तो उसका लहजा बनाता है। इस उपन्यास का अंदाजे-बयाँ जिस कमाल को हासिल किये है वह असाधारण है। सब कुछ यों तो हमारा देखा है, रोज हमारी आँखों के आगे घटित होता है लेकिन यह उपन्यास जिस फिल्म को बुनता है, उसके 'दी एंड' पर पहुँच कर भी दर्शक-पाठक भौचक सा परदे को निहारता रहता है।

धोती, दूबे और जयंत की तिकड़ी आजाद भारत की विश्व-विजयिनी तिकड़ी है। आज राजनीति और बाबा-युग का जो चोली-दामन का साथ हुआ है उसकी महागाथा भी इस उपन्यास को कहा जा सकता है। इसी अगस्त महीने के अख़बार यही सिद्ध करते हैं कि लेखक कई मायनों में भविष्य-द्रष्टा होता है। बाबा-प्रकरण इसका प्रमाण है। हरियाणा के सन्दर्भ में यहाँ पारम्परिक पूँजीवाद का खेल दिखाया गया है। आज हालात कॉर्पोरेट का जामा पहन कर थोड़े आगे जा चुके हैं। तो भी उपन्यास का कथानक विश्वसनीयता की कसौटी पर एकदम खरा उतरता है।

इस उपन्यास में लेखक ने जिस संघर्ष में प्रमोद को उतारा है, विडम्बना यह है कि वह इसे काल्पनिक विजय का नायक नहीं बना पाया है। शिशिर का टूटना भी आसुरी शक्ति की विजय तो लगता है लेकिन यूटोपिया परोसना भी लेखक का मन गंवारा नहीं कर सका।

'जाट कहवै सुण जाटणी' वर्तमान समय की दुरभिसंधि की करुण कथा है। वह करुणा बहुत मारक होती है जो हास्य के माध्यम से व्यक्त होती है। व्यंग्य की कसौटी यही है कि अपना और दूसरों का , सब का उपहास कर सकता है। इस उपन्यास में पाठक पूर्णत: 'रंदाधारी' नज़र आता है. सब कुछ को छील कर रख देता है-- लेखक का रंदा।

हमारे समाज में एक खास तरह का दोहरापन मौजूद है। यह समाज स्वस्थ-सहज प्रेम का तो घोर विरोधी है, परदे के पीछे वासना के खेल में रात-दिन लगा है। एक तरफ हरयाणा में यौन-शुचिता प्रतिष्ठा की दृष्टि से नाक का बाल बनी हुई है, दूसरी और कदम कदम पर औरत को बेइज्ज़त किया जाता है। इस उपन्यास में इस दोहरी मानसिकता पर करारी चोट है।

'नील' का दायित्व मुझे लगता है अब बहुत बढ़ गया है। अब उसे अपने अगले उपन्यास में इससे बड़ी रेखा खींचनी होगी।

सम्पर्क-98681-40469

जाट कहै सुण जाटणी

☐ प्रदीप नील वशिष्ठ

विघ्नहरण, मंगलकरण, गणपति जी महाराज
पैहला न्यौंदा आपनै, सदा राखियो मेरी लाज

यो दोहा तीन बै बोल कै दादी कहाणी सरू करदी '' एक गधयां का व्यापारी था।

सन अठारा सौ सतावन कै जमानै की दादी के जाणै अक इन दो लाइनां तै तो गणेस जी आजकाल अमीरां अर मंत्रियां के बाळकां के ब्याह कराया करैं । अर इतनी खुबात बी जद करैं, जद छप्पन तो पकवान बण रे हों अर ब्या कै कार्ड पै उनकी फोटू छपरी हो । दळिया खाण आळी दादी कै न्योंदै पै गणेस जी कड़ै आंदे होंगे? सरकारी ड्यूटी सी समझ के आंदे बी होंगे तो म्हारी बांदर सेना कै आगै हथियार गेर देंदे होंगे । क्यूंक दादी की कहाणी की पैहली ए लाइन पै हाम व्याकरण की तलवार ताण के खड़े हो जांदे '' दादी, हरियाणै म्है रैहके अंगरेज़णी क्यूं पाक्कै ? एक गधयां का व्यापारी कोनी होंदा, गधयां का एक व्यापारी होया करै।''

इब्ब हम बालकां नै के बेरा अक कहाणी असल म्है तो कहाणी सुणाणियै की लाड्डो बेट्टी होया करै। अर कौण मां-बाब्बू या बात सैहन करैंगे अक कोए उनकी बेट्टी नै छेड़ दे ? बस फेर तै दादी छोह म्है आ के फाळी बरगी लाल हो ज्यांदी। पर या बी खास ए बात थी अक हमनै तो किम्मे नी कैंहदी अर म्हारी मां नै गाळ बकण लाग ज्यांदी। हाम बी दादी की रग्ग दाबणा सीखगे। राजै की गरीब प्रजा की तरियां हामै चुपचुपाले दादी के पां दाबण लाग ज्यांदे। फेर मड़ी सी हाण पाच्छै याद करांदे '' दादी तों कहाणी सुणावै थी अक गधयां का एक...।''

कोए साऊकार मूळ का ब्याज़ लेणा भूलै तो दादी आपणी लाइन भूलै ! दादी की कहाणी उस्से लाइन तै फेर सरू होंदी हां तो भाई, एक गधयां का व्यापारी था ।

हाम आपणी छात्ती म्है मक्का सा मार कै बैठ ज्यांदे। अर दादी कहाणी की रेल सी चला देंदी 'रे भाई, इब्ब गधे होंगे तो लीद का मींह सा तो बरसै ए बरसैगा। अर या बी सुण ल्यो अक लीद होग्गी तै व्यापारी तै सूंगदे-सूंगदे भाजे आवैंगे। पर कोए व्यापारी उसकै के मांगै? क्यूंक आपणला व्यापारी तै व्यापारियां का बी बाब्बू था।

तै बेटा, जद च्यारूं कानी लीदमलीद होगी तै व्यापारी इस लीद नै सुका-पीस कै मसालयां म्है मिलाके बेचण लागग्या। अर भगवान की करणी इसी होइ अक रेहड़ियां पै मुद्धे होकै चाट-पकौड़ी खाण की शौकीन लुगाइयां अर राण्डिए माणसां नैं यो मसाला इस्सा सुआद लाग्या अक गिणे-चुने दिनां म्है ए उसकी कोठी पिस्सयां तै ठाड्डी भरगी।

हामे भूंडा सा मूंह बणा के कैंहदे, दादी, कान कतरण नै तन्नै आपणे ए पोते पाए ! हाथी की हो तो चलो मान बी ल्यां, इब्ब बता गध्यां की लीद तै बी कदे पीस्से मिलया करैं...

दादी आपणे दोनूं कानां कै हाथ लाके छांत कानी देखके सरू हो जांदी, 'ए लीलै तंबू आळे भोलेनाथ, ए मेरे रामजी! इन माट्टी के डळयां नै इतनी सी अकल तो जरूर दिए अक यें भोळे बाळक आपणै जींदे जी गध्यां नै निरे ए गधे नी समझैं। ए मेरे दाता, इन घपड़चौथां नै न्यूं बी सिखाइये अक पिस्से रूखां पै कोनी लागदे, यें तो गधयां की लीद म्है तिरदे फिरया करैं। आछ्या बाळको, इब्ब न्यूं बताओ अक भोत पीस्से हों तो आदमी खुस होगा कै नीं?''

दादी हाथां नै खूब च्यौड़े करके कहया करदी -भोत पीस्से। हाथ च्यौड़े देख हामे अंदाजा सा ला लेंदे अर अपनी जाण म्है सई जवाब देंदे 'हां दादी, खुस नी, भोत खुस।''

'' के बोल्या जाएरोए , भोत खुस! '' दादी बांगा सा मूंह करके म्हारै कान तळै चट्ट सेक देंदी, ' रे भिड़ाण जोग्यो, पीस्सयां तै तो भगवान का बी भला नी होंदा, व्यापारी के घणा नदीद था? खुस कड़ै, बिच्चारा व्यापारी तो सूकणै पड़ग्या अक उस धोरै इ्यान बिना का पिस्सा। अर फेर बी गाम आळे उसकी इज्ज़त कोनी करदे अर उसनै 'लिद्दू' कहके छेड़ैं।

आत्मकथ्य

एक बात ने कई सालों से मुझे परेशान कर रखा था। और वह शर्म की बात यह कि अपने हरियाणा में हरियाणवी बोलने वाले को नाक-भौं चढ़ा कर इस नज़र से देखा जाता है कि इस बेचारे को हिंदी या अंग्रेजी तो आती ही नहीं होगी। और यह या तो कम पढ़ा लिखा होगा या फिर पक्का ही किसी देहात का हाळी-पाळी।

बस तभी एक दिन मैंने फैसला किया कि बीस साल से अंग्रेजी पढ़ा रहा, एम. ए. , एम. फिल. डिग्री वाला लेक्चरर अपनी बोली में उपन्यास लिखेगा। मित्र समझाने लगे - अंग्रेजी में लिखो, पूरे ग्लोब पर पहचान बनेगी। हिंदी में लिखोगे तो भी बहुत दूर तक जाओगे। हरियाणवी में लिख कर हरियाणा में ही सिमट कर रह जाओगे। और फिर तुम्हारी यह किताब खरीदेगा कौन क्योंकि हरियाणा में तो वैसे भी कोई किताब पढ़ने का रिवाज़ ही नहीं है। लेकिन मैं यह साबित करने की जिद्द पकड़े हुए था कि हरियाणवी सिर्फ अनपढ़ों की बोली नहीं है, बल्कि हम सबकी मां-बोली है।

'जाट कहवै , सुण जाटणी' छप कर आया तो मैं बहुत डरा हुआ था कि ऐसा न हो कि यह किताब धरी की धरी रह जाए और मेरे हरियाणवी-प्रेम की बेइज़्ज़ती हो जाए। लेकिन, यह इतनी तेजी से लोकप्रिय हुआ कि मैं बहुत हैरान था। अभिभूत हूं, यह देख कर कि आम पाठक इसे सीने से लगाए हुए हैं।

प्रदीप नील वशिष्ठ

व्यापारी इतनी कायली मानग्या अक रातूं-रात यो गाम छोड्ड के भोत दूर एक सैहर मेदनीपुर म्है गूदड़े जा टेके । ओड़ै उसकै बाब्बू नै एक बड्डा सा गुदाम मोल ले लिया, बड्डा सा घर अर इस्सै बात पै ओड़ै के स्याणे लोग उसनै भोत बड्डा आदमी मानण लाग्गे। इब्ब तो व्यापारी नै खुस हो ज्याणा चइये था पर एक और टैन्सन नै उसका जीणा दूब्बर कर राख्या था।

अर बेटा, टैन्सन या अक इब्ब मेदनीपुर के लोग उसनै के कैह के बुलावैं । यें सुथनै आळे सहरी गरीब रणधीर नाई नै तो नाम बिगाड़ के धीरा कैंहगे। अर बड्डै आदमी का नाम बी कोनी लेवैं जिस तरियां बहू आपणै जेठ अर सुस्सरै का नाम कोनी लिया करदी। बड्डै आदमी नै जात गल्लै जी अर नईं तो साब लगा के बोलण का रिवाज़ सै । इब्ब न्यूं तो थम बी जाणो अक आपणै देस म्है रोटी-पाणी बिना तै फेर बी गुज़ारा होजे पर जात बिना कोनी होवै। अर या ए बणी। पैहलै ए दिन उसकै एक पड़ोसी नै पूछ बी लिया "भाई साब, आपकी जाति क्या है?"

व्यापारी इस बात की त्यारी कोनी कर रया था ज्यांतै उसकै मूहं तै एकेदम लिकड़ग्या ' गुप्त।'

रे भाई, उसनै गुप्त कैह तो दिया पर कैह के डरया बी भोत बिच्यारा। इब्ब उसनै न्यूं के बेरा था अक चोर तै कोए सिपाई एकेदम पूछ ले "कौन हो तुम?" अर डरदै चोर कै मूंह तै लिकड़ जे "चोर" तै भाई पुलिसिया तो इसनै मजाक ए समझैगा। बिच्यारा व्यापारी तै आपणी जात लकोहणा चावै था, ज्यांतै 'गुप्त' कैह बैठया। पूछणिया गरीब आदमी था। गरीबां की एके पिछाण होया करै अक वें अमीरां कै मज़ाक नै साच्ची मान लिया करैं। बावली बूच भाज्या गया अर पूरै सहर म्है ढिंढोरा पीटण लाग्या अक उसका पड़ौसी कोए इस्सा-उस्सा टटपूंजिया कोनी, बल्के भोत बड्डे गुप्त जी सैं।

फेर दादी मड़ा सांस ले के कैंदी 'इब्ब चए थामै बेसक आपणी बेसुरी मां कै कानां म्है पो दियो, पर भुंडौड़ी बात कए बिना मेरै पै बी कोनी रया जांदा। बात या अक थारी मां राण्ड नै थारै बाब्बू कै घेटी म्है गूंठा देके थामै अंगरेजी स्कूलां म्है दाखल कराए थे। थारा बाब्बू पिस्स्यां की भाथड़ बांद के स्कूल की फीस देवै अर फेर थामे कंजर केरल नै केरला अर हनुमान नै हनुमाना कैहणा सीखो। थारी मां तै तो मेरे मेदनीपुर के गूंट्ठा टेक घणे स्याणे निकळे। उननै चवन्नी खरचणी तै दूर, स्कूल धोरै को काटड़ा ले के बी कोनी लिकड़े अर फेर बी कान्वैन्ट स्कूल के बाळकां की ढाळ गुप्त नै गुप्ता कैहण लाग्गे।

तो भाई, गुप्ता जी कुहाके व्यापारी कै बी सांस म्है सांस आए। ज्यान तै बची ए अर सक्कर सी बी भीजगी। मन म्है लाड्डू फूट्टण लाग्गे अक इब्ब गुप्ता जी बणया पाछै सहर के बड्डै लोगां गैल उठ-बैठ रहैगी। सहर म्है किस्से नै बेरा कोनी पाटदा अक गाम म्है कोए के होया करदा अर उरै आके के बणग्या! मन्नै तो भाई इन आंख्यां तै देख राख्या सै अक ठेठ देहातण बी सहर आंदे ए रिफळ के काळै नाग बरगी चोटी कटा लें। ऊप्पर तै पहरावा इस्सा अक नीं बोलैं तो बेरा ए नीं पाटै अक स्यामी किरण भैंजी सैं अक कर्ण भाई साब। चल जाण दयो रे! आपां नै के लेणा-देणा ? वें तिरिया जाणैं, उनका देह-धर्म जाणै अर उनके खसम जाणैं। पर आपणै व्यापारी कै तै एक टैन्सन और होगी।"

दादी बात करदी व्यापारी कै टैन्सन की अर या टैन्सन होण लाग ज्यांदी म्हारै। गोझ म्है रप्पिए आंदे ए हाम बाळक तो नाच्यां करै अर दादी का लिद्दू टैन्सन लेवै। या के बात होई? हामनै दादी की या टेकनीक टीवी आळे बाब्यां बरगी लाग्या करदी। यें मेरे बट्टे बाब्बे लोगां नै तो मोह-माया तै दूर रहण की नाळ सी प्याये जांवै अर आप दोनूं हाथां तै पिस्से सूड़ैं । मोह का तो बेरा नीं, पर माया किसे-किसे बाब्बै की बुक्कळ म्है तै अखबार आळे चौथे दिन काड्डे राखैं। हामे सोचदे या बुढ़िया कदे ज्यांतै तो पिस्सै नै टैन्सन गल्लै नीं जोड़दी अक हामे उसपै पिस्से ना मांग ल्यां।

दादी कैंहदी " तो भाई रे, व्यापारी कै टैन्सन या अक मोकळा पिस्सा, फेर बी बिच्यारा अमीर दिखण खातर ब्रैण्डिड कपड़े पहरण नै तरसै। एक दिन कोट-पैंट अर टाई ले तो आया खूब मैंहगे, पर मोट्टा इतना अक पैहरके चाल्या नी जावै। टसक-टासक के थोड़ा-भौत टैहल तो लिया पर दुकान की गद्दी पै बैठण लाग्या तै नानी याद आगी। फेर बी धक्का करके बैठया अर बैठदे ए पैंट पाछै तै भर...र्र..र्र होके बड्डा सा बाघा-बोडर खुलग्या। हारके उसने आपणी वा ए धोती बांधणी सरू कर दी। इब्ब न्यूं बताओ अक मेदनीपुर आळे उस धोती आळे नै के कैहण लाग्गे होंगे?

हामे स्कूल म्है सीख्योड़ा मुहावरा बताण लागदे " लौट कर बुद्धू घर को आए।"

दादी टूट के पड़दी " वा रै माट्टी के शेरो ! थारै बाब्बू की तरियां घणे ज्ञानी राम ना बणो। थारी बेसुरी मां के गधै आळे मोट्टे दिमाग तै सोचोगे तो मेदनीपुर की नब्ज थ्यावैगी।"

बूड्ढी सी फूक के हामे दूसरा मुहावरा बतांदे " कव्वा चला हंस की चाल।"

दादी छोह म्है आ ज्यांदी "बेसुरी राण्ड सेद्धै ए सेद्धै! जिस्सी कमअकल मां, उस्सी ए उलाद जाम के गेर दी। आपणी डाक्कण मां का एक रूंग तो छोड दिया होंदा।" फेर म्हारै म्हैं को म्हारी मां नै हराण खातर दादी जिद्दी ला के खडी़ हो ज्यांदी "चए तो उत्तर बताओ, अर नईं तै बोलो हार मान ली।"

हारके हामे कंहदे "हार मान ली। इब्ब तों बता दादी, मेदनीपुर आळे उस मोट्टै नै के कहया करदे ?"

" धोती प्रसाद।" दादी पोपले मूहं तै हांस्सण कै चक्कर म्है जनरेटर की तरियां फक्क -फक्क हवा फैंकण लाग ज्यांदी।

"धोती प्रसाद !हा हा । यो के नाम होया?" हामे ताड़ी पीटकै घणी ए देर ताईं हांसदे अर पैर ऊप्पर करके खाट पै लोट मारण लाग ज्यांदे।

"चुप्प ऽऽ, बदमासो। एक बी सांस काढ़या तै ज्यान काढ़ ल्यूंगी! बांदर बरगी सकल आळी आपणी मां की तरियां सारै दिन खिर्र-खिर्र ए करणी आवै अक किम्मे और बी आवै थमनै?" दादी धमकाण लाग ज्यांदी। फेर मड़ी सी हाण पाच्छै कबूतर की तरियां आंख गोल करके फुसफुस करदी " घणे स्याणे बनो तै न्यूं बताओ अक धोती की घर आळी नै मेदनीपुरिए के कैंहदे होगे ?" •

सम्पर्क-9996245222

□सत्यवीर नाहडिया़

लोग्गां की हुसयारी देक्खी,
न्यारी दुनियादारी देक्खी।

चोर-चोर की बात छोड़ इब,
चोर-पुलिस म्हं यारी देक्खी।

दरद मीठला़ देग्यी बैरण,
सूरत इतनी प्यारी देक्खी।

घूम्मै नित अफसरी का कुणबा,
जीप इसी सरकारी देक्खी।

सुसरे नै हे घूंघट काढ्या,
नयी बहू जब न्यारी देखी।

अनदात्ता का हाल बुरा सै,
खाल्ली मनै बुखारी देक्खी।

बैरी किस पै कब आ ज्यावै,
दिल की खास बिमारी देक्खी।

वो गोदान हुया ना इब लग,
होरी की लाचारी देक्खी।

हार-जीत नेत्तां नै देक्खी,
जंता हरदम हारी देक्खी।

सम्पर्क -9416711141

बाम्हण अर बाणिया

एक बणिया घणा ऐ मूंजी था वा रोज गुवांडा मैं जाकै रोटी खाये करै था अर उसकै घरां किसी बात की कमी नी थी। सारे गुवांड उसतै कतराण लाग्ये। एक दिन उसतै किस्सै नै भी रोटी ना दी। वा भूखा मरदा घरां कान्हीं चाल पड्या। रास्ते मैं उसने एक पीपल का पेड़ देख्या जिसपै बरबन्टे लागर्ये थे।

भूख का मार्या वा बरबन्टे खाण खात्र पेड़ पै चढ़ग्या। जब वा पेड़ पै तै उतरण लाग्य तो उसका सारा शरीर कांबण लाग्या। वा भगवान आगै हाथ जोड़ कै बोल्या के हे भगवान मन्नै कदे किस्सै तै रोटी नी खिलाई तौं मन्नै ठीक-ठाक नीचे तार दे मैँ तेरे नाम पै सो बाम्हणां नै जिमाऊंगा वा ढेठ सा करकै थोड़ा सा नीचे आग्या तो बाणिया कहन लाग्या अक् ईब तो मैं 90 बाम्हणां नै जिमाऊंगा। इसी तरियां वा नीचै आन्दा गया अर बाम्हणां ने कम करदा गया। जब वा लवै सी आग्या तो उसने आंख मीच कै छलांग मार्यी वा सहज से सी जा पड्या। बणिया कहण लाग्या अक् तन्नै मैं नीचे तो गेर ए दिया, फेर तेरे नाम पै किस्सै बाम्हणां नै क्यूं जिमाऊं। इतनी कहकै बाणिया घरां कान्हीं चल पड्या।

या बात किसी दूसरे बाम्हण नै सुण ली। वा बाणिये तैं पहले घरां जाकै बाणनी तै बोल्या अक् बणिया नै सो बाम्हण जिमाणे ओट राख्ये सैं तोल करकै खाणा बना दे। बाणनी नै तो तोल करके खाणा बणा दिया। सारे बाम्हण उसके खाणा खाकै आये।

जब बणिया घरां आया तो बाणनी उसतै पूछण लाग्यी अक् जोण सै थानै 100 बाम्हण ओटे थे उन तैं मन्नै खाणा खिला दिया। इतणा सुणदे बाणिया कै तो ताप चढ्ग्या वा बाम्हणां कै लड़ण खात्र गया। बाम्हण नै भी अपनी बाम्हणी सिखा दी अक् जब बणिया उरै आवै तो थाम कह दियो अक् थानै बाम्हण तै इसा खाणा खुवाया वा तो आन्दे ए मरग्या था। ईब म्हारे बालकों का हे होगा। बाणिया जद उनकै घरां आया तो बाम्हणी उसके सिर होग्यी के तन्नै मेरा बाम्हण मार्या सै बाणिया नै तो पीछा छुड़ाणा मुशकल होग्या।

एक दिन बाम्हण बाणनी न मिलग्या। बाम्हणी बोल्यी के दादा थाम तो मरग्ये थे फेर भी थाम उरै फिरो। बाम्हण बात समझाया, वा कहण लाग्या अक् मैं तो सुरग मैं तैं बालकां का पता लेण आया सूं। उस बाणनी की भी छोहरी मर्यी थी व उसनै घणा ए प्यार करै थी। वा कहण लाग्यी अक् पण्डत जी ईब थाम कद जावोगे। बाम्हण कहण लाग्या अक् मैं तो ईब मिलदा ए जाऊंगा वा कहण लाग्यी अक् ईब कै आन्छे हाण म्हारी छोहरी का भी पता ल्याईए। बाम्हण तो आगले दिन बाणनी लवै जा पोंहच्या अर कहण लाग्या अक् तेरी छोहरी नै कपड़े-लत्ते अर रपईये मंगाये सैं। वा घणी तंगी मैं रह रही सै। बाणनी ने तो जहान का समां बांध दिया। जब बणिया नै पता लाग्या तो उसके सुणदे के प्राण लिकड्ग्ये। कुछ दिनां पाछै बाम्हण बाणनी नै फेर मिलग्या। बाम्हण कहण लाग्या अक् तेरी छोहरी ठीक-ठाक सै। मैं तो ईब जमाए र्हण खात्तर उरै भेज दिया सूं।

संकलनकर्त्ता-शंकरलाल यादव